विषय

(१६) देहली की "कोठी" (पद्य) [चतुर्वेदी द्वारका-
प्रसाद शर्मा ... ...
(१७) विदुर नीति (पद्य) [बा० गोपालचन्द्र ...
(१८) सत्यहरिश्चन्द्र (नाटक) [भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
(१९) सीता का दूसरा वनवास (पद्य) ["मिश्रबन्धु"
(२०) हिन्दुस्थान की सुरंगें (पद्य) [आश्चर्य सतदशी से

रक्षा करो अविद्या टारो ।
शुद्ध सुमति दो हमें सुधारो ॥ ४ ॥
हम सब शरण तुम्हारी आये ।
शान्ति मिलन की आस लगाये ॥
हे भगवान हृदय में आओ ।
हम सब को विद्वान बनाओ ॥ ५ ॥
अपनी आज्ञा का अनुगामी
बना लीजिए अन्तर्यामी ॥
हे गुणेश ! गुण ज्ञान बढ़ाओ ।
हमको दास जान अपनाओ ॥ ६ ॥
सकल कामना करो हमारी ।
दो विवेक विद्या बल भारी ।
कृपा करो हम पर सुखकारी ।
जिससे सुधरे दशा हमारी ॥ ७ ॥
हमने अभी प्रतिज्ञा कर ली ।
यह ध्वनि मन-मन्दिर में भर ली ।
अब न कभी हम पाप करेंगे ।
तन मन वचनों से सुधरेंगे ॥ ८ ॥

(कविताविनोद से)

किया। हम जानते हैं कि किस प्रकार अनेक विघ्न बाधाओं को सहकर कितने ही दिनों तक भयानक कष्टों और आपत्तियों को झेल कर जनता ने क्रमशः अपनी उन्नति की है जिसका फल यह हुआ है कि प्रत्येक सभ्य देश के गरीब आदमी अपने पुरखों की अपेक्षा अधिक सुख चैन से हैं। हम जानते हैं कि किस प्रकार तातार की अनेक क्रूर और धर्मभावशून्य जातियां बौद्ध धर्म ग्रहण करने को तैयार हुईं, किस प्रकार बौद्ध धर्म का प्रभाव और प्रचार बढ़ा तथा उससे मनुष्यों की रहन सहन में कितना गुण-परिवर्तन हुआ। पुस्तकों से हम देखते हैं कि किस प्रकार ज्ञान और शक्ति एक जाति से निकल कर दूसरी जाति में जाती है, उनमें यह भी पता लगता है कि किन किन कारणों से और किन किन दशाओं में पतन होता है। भारतवर्ष, फारस, काबुल, मिश्र, यूनान, रोम जो अब नाम ही नाम को रह गए हैं, कल्पना में जिनके प्रताप और महत्त्व की धुंधली छाया मात्र शेष रह गई है, पुस्तकों द्वारा ये हम अपने यथार्थ रूप में प्रकट होते हैं और हम उनकी यथार्थ स्थिति को समझने में समर्थ होते हैं। इन प्राचीन देशों की आ जब हम ध्यान देते हैं तब हम दिनों के फेर को सोचते हैं, भाग्य की चंचलता को सोचते हैं और व्यक्ति के जीवन-का और एक जाति के भाग्य-चक्र के बीच जो विलक्षण समानता है उस पर विचार करते हैं। एक धार्मिक उपदेशक कहते हैं कि "चाहे एक व्यक्ति को लो चाहे एक जाति को लो, स

रोना बरसता था, गोमती के किनारे छत्तरमंज़िल शीशमहल आदि को देख आँखों में चकाचौंध होती थी नादिरशाह के आक्रमण के समय मोहम्मदशाही में दिल्ली की जो रौनक़ थी, वह फिर कभी काहे को दिखाई देगी। जिस समय महमूद ने हिन्दुस्तान की ओर यात्रा की उस समय फूट आदि के कारण हिन्दुओं की राजनैतिक शक्ति बिल्कुल क्षीण हो चुकी थी पर मथुरा सोमनाथ आदि तीर्थ स्थानों का ठाट बाट और वैभव वर्णन के बाहर था। जिस समय बादशाह बेलशाज़र अपने विशाल भवन में बैठा हुआ दीवार पर अपने भाग्यरेख को पढ़ रहा था और विजयी पारसियों की विजय-दुंदुभी का तुमुल शब्द सुन रहा था उस समय बाबुल की शोभा अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी।

इतिहास की पुस्तकों से पाठकों को एक अत्यन्त अनमोल शिक्षा मिलती है। मनुष्य-जाति के मामलों में परमेश्वर किस प्रकार समय समय पर हाथ डालता है वे स्पष्ट देखते हैं। पर आधुनिक कोटि के इतिहासवेत्ता इस बात को देख कर भी इससे अनभिज्ञ बनते हैं। वे प्रत्येक कार्य या घटना के कारण का पता विकास सिद्धान्त अथवा मिथ्याकल्पित नियमों द्वारा लगाने का दम भरते हैं। पर यह बात ऐसी प्रत्यक्ष है कि इस पर धूल नहीं डाली जा सकती। यह संसार के इतिहास में अमिट अक्षरों में अंकित है। थोड़ा उन घटनाओं पर ध्यान दीजिए जिनके सहारे छत्रपति महाराज शिवाजी एक

यूरोप काँप उठा था, पर सच पूछिए तो भीतर ही भीतर उसके विनाश के सामान इकट्ठे हो रहे थे। औरंगजेब के राजत्व काल में मोगल साम्राज्य अपने पूर्ण विस्तार को पहुँच गया था, पर इतिहासविज्ञ मात्र जानते हैं कि वह वास्तव में उसके खंड खंड होने का आयोजन मात्र था। जिस समय महाराज पृथ्वीराज दिल्ली के राजसिंहासन पर थे उस समय राजपूतों की शक्ति पराकाष्ठा को पहुँची जान पड़ती थी, पर देखते ही देखते वह शक्तिविहीन हो गई और हिन्दू साम्राज्य का अस्त हो गया।

इतिहास की उस अस्थिरता का, जिसका परिज्ञान हमको पुस्तकों द्वारा होता है, एक और भी दृष्टान्त दिया जा सकता है। विद्याभ्यासी युवक यदि संसार की बड़ी राजधानियों के इतिहास को उनके राज्यों के इतिहास से मिलान करेंगे तो उन्हें जान पड़ेगा कि एक ओर तो उन राज्यों की शक्ति क्रमशः क्षीण हो रही थी, दूसरी ओर उन राजधानियों की शोभा पूर्ण समृद्धि को पहुँची दिखाई पड़ती थी। जब अवध के नवाबों का प्रताप प्रस्थान कर चुका था, जब वे अपने राज्य की स्थिति के लिये दूसरी राजशक्ति का मुँह ताकने लगे थे, जब उनमें अपना बल कुछ भी नहीं रह गया था, जब क्षमताहीन विलासपरायण वाजिदअली शाह सहस्रों रमणियों से घिरे हुए मोतियों की राख फाँकते थे, उस समय लखनऊ के जोड़ का और दूसरा नगर भारतवर्ष में नहीं था। वहाँ आठों पहर

सोना बरसता था, गोमती के किनारे उच्चश्रेणिक शोरगुल आदि को देख आँखों में चकाचौंध होती थी नादिरशाह के आक्रमण के समय मोहम्मदशाही में दिल्ली की जो रौनक़ थी, वह फिर कभी कहीं को दिखाई देगी। जिस समय महमूद ने हिन्दुस्तान की ओर यात्रा की उस समय फूट आदि के कारण हिन्दुओं की राजनैतिक शक्ति बिलकुल क्षीण हो चुकी थी पर मथुरा सोमनाथ आदि तीर्थ स्थानों का ठाट बाट और वैभव वर्णन के बाहर था। जिस समय बादशाह बेलशाज़र अपने विशाल भवन में बैठा हुआ दीवार पर अपने भाग्यलेख को पढ़ रहा था और विजयी पारसियों की विजय-दुंदुभी का तुमुल शब्द सुन रहा था उस समय बाबुल की शोभा अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी।

इतिहास की पुस्तकों से पाठकों को एक अत्यन्त अनमोल शिक्षा मिलती है। मनुष्य-जाति के मामलों में परमेश्वर किस प्रकार समय समय पर हाथ डालता है वे स्पष्ट देखते हैं। पर आधुनिक कोटि के इतिहासवेत्ता इस बात को देख कर भी इससे अनभिज्ञ बनते हैं। वे प्रत्येक कार्य या घटना के कारण का पता विकास सिद्धान्त अथवा निश्चकल्पित नियमों द्वारा लगाने का दम भरते हैं। पर यह बात ऐसी प्रत्यक्ष है कि इस पर धूल नहीं डाली जा सकती। यह संसार के इतिहास में अमिट अक्षरों में अंकित है। थोड़ा उन घटनाओं पर ध्यान दीजिए जिनके सहारे छत्रपति महाराज शिवाजी

बड़े साम्राज्य के संस्थापक हुए थे और देखिये कि किस प्रकार वे दैव प्रेरित जान पड़ती हैं। भारत के इतिहास में मगध का शुंग राजवंश प्रसिद्ध है। इनके शूद्र संस्थापक ने कण्व वंश के अंतिम राजा को धोखे से मार कर मगध का राजसिंहासन प्राप्त किया था। इस वंश का राज्य बहुत दिनों तक नहीं चला। इसका अंतिम राजा पुलोम गंगा में डूब कर मरा। फिर यही दशा इस वंश की हुई जो इसके संस्थापक ने कण्व वंश की की थी पुलोम का सेनापति राजदेव राजा बन बैठा। पर उसे इसका ठीक ज्यों का त्यों प्रतिकार ईश्वर की ओर से मिला, इसका सेनापति प्रतापचंद्र उसे गद्दी पर से हटा कर राजा हुआ। इस प्रकार यह प्रतिकार-परम्परा शताब्दियों तक चली और एक सेनापति के पीछे दूसरा सेनापति राजा बनता रहा। ये सेनापति राजा इतिहास में अंध्र भृत्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। देश द्रोही जयचंद ने द्वेष से प्रेरित होकर पृथ्वीराज की शक्ति को ध्वस्त करने की कुटिल कामना से मुसलमानों को बुलाया, पर बहुत दिन यह अपने इस घोर पाप का सुख न भोग सका। दो ही वर्ष के भीतर उसी सेना ने, जिसे उसने अपने देश भाईयों का रक्त बहाने के लिए बुलाया था उसको रणभूमि में सुला कर उसका सर्वस्व हरण किया और द्रोह का भयंकर परिणाम भारतवासियों को दिखला दिया। भारतवासियों की धर्मप्रवृत्ति का बौद्ध धर्म द्वारा जो संस्कार हुआ उसे देखने से स्पष्ट झलकता है कि किस प्रकार

मनुष्यों के आचार-व्यवहार और राजनीति में अनुकूल परिवर्त्तन उपस्थित करने के लिए परमात्मा की प्रेरणा से एक नई शक्ति खड़ी हो जाती है। जिस समय भारतवासी परमात्मा धर्म-पुरुषार्थ छोड़कर कर्मकांड की जटिल क्रियाओं में समझने लगे थे उस समय उन्हें परोपकार और दया धर्म की ओर फिर से प्रवृत्ति देने के लिये भगवान् बुद्ध का अवतार हुआ। अग्निष्टोम, वाजपेय, दर्शपौर्णमास आदि का जितना फल समझा जाता था उतना ही फल कुआ तालाब खुदवाने, बाग़ लगाने आदि का भी समझा जाने लगा। यह ठीक है कि परमात्मा का विस्तृत उद्देश्य कभी कभी हमारे संकुचित उद्देश्य से भिन्न होता है जिससे हमारे मन में अनेक प्रकार की शंकाएँ उठती हैं। हम जैसा होना न्याय समझते हैं वैसा होने न देख ईश्वर के विषय में अनेक प्रकार के संदेह करने लग जाते हैं। पर यदि विचार कर देखिए तो इतिहास में चारों ओर परमेश्वर की प्रेरणा का आभास मिलता है। कितनी छोटी छोटी बातों से संसार में कितने बड़े बड़े परिवर्त्तन उपस्थित हुए हैं, यह प्रत्येक इतिहासविज्ञ मनुष्य को विदित है। जहाँ एक शक्ति का पतन और नाश होता है वहीं दूसरी शक्ति का उदय और उत्थान होता है। अव्यवस्था के उपरान्त व्यवस्था स्थापित होती है, अंधेर के पीछे सुनीति का सञ्चार होता है, दुर्बलता के पीछे बल आता है। बड़े बड़े प्राचीन राज्यों के खंडहरों की ईंटों को जोड़ बटोर कर

[illegible] अधिक बल वैभव सम्पन्न साम्राज्य खड़े होते हैं। मिश्र, काबुल, फारस आदि [illegible] से यूनान की सभ्यता का [illegible] यूनान [illegible] शक्ति से रोम राज्य खड़ा हुआ [illegible] यूरोप की आधु- [illegible] हुए।

[illegible] थोड़ा मोगल बादशाह [illegible] ध्यान देना चाहिए। [illegible] की चरम सीमा [illegible] की थोड़ा [illegible] के लिये बढ़ रहा था। [illegible] एक महा- शक्ति ने [illegible] दिया। औरंग- [illegible] मात्र थी। [illegible] पहुंच गई और [illegible] शक्ति ने अपने हाथ में [illegible] गुरु गोविन्दसिंह के सिक्खों [illegible] दिया जिसने [illegible] अफगानिस्तान में [illegible] दिया [illegible] सारे यूरोप [illegible] लेकर रूस की ओर [illegible] हुई [illegible] जिन्होंने यूनान और [illegible] किन्हें [illegible]

भूख और प्यास से तड़प तड़प कर अपने प्राण दिये और वह अपना सा मुंह लेकर बड़ी कठिनता से लौट सका।

पढ़ने से और और जो लाभ हैं उन में कुछेक थोड़े में कहना चाहता हूँ। अध्ययन के द्वारा हम घर बैठे बड़े बड़े धुरंधर विद्वानों के गम्भीर विचारों को जान सकते हैं, संसार के प्राचीन महापुरुषों के सत्सङ्ग का लाभ उठा सकते हैं। अध्ययन द्वारा हम ज्ञान के अंत तक पारावार पहुँच सकते हैं। चाहे ज्ञानदाता जिस स्थान पर हो और जिस काल में हुआ हो। इस विषय में दिक् और काल कोई बाधा नहीं डाल सकते। अध्ययन के द्वारा हम वाल्मीकि, व्यास और गौतम से उतने ही परिचित हो सकते हैं जितने उनके समकालीन थे। अध्ययन हमें भारतवर्ष के अतुल ज्ञान भांडार से संतुष्ट करा सकता है, यूनान रोम आदि की विचारपरम्परा से परिचित करा सकता है। अरब फ़ारस आदि की भावुकता का अनुभव करा सकता है। भवभूति को हम मृत कैसे समझें जब कि वह 'उत्तर रामचरित' द्वारा हमें अपनी मधुर वाणी सुना रहे हैं। क्या कालिदास के लिये उज्जयिनी में सिप्रा के किनारे जाकर हमारा आंसू बहाना ठीक है जब कि अपने अलौकिक काव्य द्वारा वे हमारे सामने उपस्थित हैं। थोड़ा सोचिए तो कि इससे बढ़कर आनंद और क्या हो सकता है कि हम अपनी कोठरी में ऐसे ऐसे साथियों को लिए आराम के साथ बैठे हैं जैसे कालिदास, भवभूति, चन्द्रबरदाई,

तुलसी, रहीम। हमारा जब जी चाहता है तब हम जायसी की कहानी सुनकर अपना समय काटते हैं, जब मन में आता है सूर के प्रेम और चतुराई से भरे पद सुनकर रसमग्न होते हैं, कभी कल्पना में चित्रकूट के घाट पर बैठे राम लक्ष्मण का दर्शन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी की बानी। फिर से अपने उद्विग्न मन को शांत करते और मर्यादापुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र का चरित्र देख पुलकित होते हैं। एक कोने में कबीर अपनी पड़ी टेढ़ी बानी और "शब्द साखी" द्वारा पण्डितों और मुल्लाओं को फटकारते बैठे हैं। कहीं बौद्धों से झगड़ते झगड़ते थक कर सिर पर हाथ दिए अद्वैतवादी शंकराचार्य संसार को मिथ्या बतला रहे हैं, कहीं भूषण जी मरहठों के बीच बैठे अन्याय-दमन की उत्तेजना दे रहे हैं। इसी प्रकार की एक बानी मंडली जहाँ लगी हुई है वहाँ और कोई साथी न रहे तो क्या?

पुस्तकों द्वारा किसी महापुरुष को हम जितना जान सकते हैं उतना उसके मित्र क्या पुत्र कलत्र भी नहीं जान सकते। चाणक्य पर जितना उसके पाठक विश्वास करते हैं उतना उसके समय के लोग न करते रहे होंगे, उसकी बात चीत में ये खरी खरी बातें आती रही होंगी जो उसके लेखों में आती हैं। ग्वाल आदि शृंगार के कवियों से पाठकों के चरित्र और भाव जितने दूषित हो सकते हैं उतने उनके पास बैठने वालों के न होते रहे होंगे। जो ग्रन्थकार अपने जीवन-

...ल में आसपास के लोगों से मिलने वालों में बहुत थोड़े ऐ...ते थे, अध्ययनशील पुरुषों के निकट वर्तमान में वे अपनी पुस्तकों द्वारा अपने हृदय के सारे भावों को खोलकर प्रकट कर देते हैं। उनकी पुस्तकों द्वारा हम उन्हें पूर्णरूप से जानते हैं, उनकी सारी बातें हमारे सामने आ जाती हैं, कोई बात छिपी नहीं रहती। चाणक्य के महत्त्व को जितना हम आजकल के लोग समझ सकते हैं उतना उसके समकालीन लोग नहीं समझ सकते थे। वे उसके मुख के सन्निकट थे और वे उसकी स्थिति के पूर्ण रूप को नहीं देख सकते थे। यदि किसी पर्वत के आकार और विस्तार को पूर्ण रूप से देखना चाहो तो तुम्हें उससे कुछ दूर जाकर खड़ा होना होगा। इसी प्रकार हम लोग २००० वर्ष पीछे हट कर उसके "अर्थशास्त्र" और "नीति" द्वारा तथा इतिहास में उसकी कृतियों को देख उसकी बुद्धि की गम्भीरता और तत्परता का पूर्ण अनुमान और उसके बतलाए हुए आदर्श राज्य की भावना का पूरा अनुभव कर सकते हैं।

जो विचारशील पुरुष पढ़ता है और पुस्तकों से प्रेम रखता है, संसार में उसकी स्थिति चाहे कितनी ही बुरी हो, उसे साथियों का अभाव नहीं खल सकता। उसकी कोठरी में सदा ऐसे लोगों का वास रहेगा जो अमर हैं। वे उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने और उसे समझाने के लिये सदा प्रस्तुत रहेंगे। कवि, दार्शनिक और विद्वान् जिन्होंने अ...

घोर प्रयत्नों द्वारा प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करके शान्ति और सुख का तत्त्व निचोड़ा है, बड़े महात्मा जिन्होंने आत्मा के गूढ़ रहस्यों की थाह लगाई है सदा उनको सुनने तथा उन की शंकाओं का समाधान करने के लिये उद्यत रहेंगे। यदि पाठक चाहें तो उनमें से प्रत्येक व्यक्ति उसको तुच्छ चिंताओं से मुक्त करके ऐसी मायामयी सृष्टि में ले जाने के लिए तैयार रहेगा जहाँ सांसारिक प्रपञ्चों का लेश नहीं। चाहे कितनी घोर निस्तब्धता हो उसे प्रकृति का मधुर और रहस्य पूर्ण संगीत कानों में पड़ेगा, कोमल और गम्भीर वचन सुनाई पड़ेगा। कालिदास अपनी अलौकिक प्रतिमा के बल उसे मेघ के साथ अलकापुरी में पहुँचावेंगे, जहाँ—

नित पीन के घेरे किते बहु बादर घूमत घूमत आवत हैं।
जल बूँदन की बरखा करिकै अंगनान के चित्र मिटावत हैं॥
भयभीत से फेरि झरोखन ह्वै सिमिटे तन बाहर धावत हैं।
कढ़ि जात को बेगि धुआँ बनि के बड़े चातुर येहू कहावत हैं॥

अथवा भवभूति के साथ जाकर उस दंडक वन में थोड़ा विश्राम पावेंगे, जहाँ—

कहुँ सुन्दर घनश्याम कतहुँ धारे छवि घोरा।
कहुँ गिरि कोहन गूँजि, चढ़त झरनन कर सोरा।
सुनसान कहुँ गम्भीर बन कहुँ, सारे बनपसु करत हैं।
कहुँ लपटि निसरत सुत अजगर साँस सन तरु जरत हैं।

ारि कोह मद बहु जलचरे, कहुं द्रुम खग सभाग हैं।
हि लोह गिरगिट पिशुन तहँ जब प्यास सम बवशन हैं॥

तुलसीदास उसे अपने साथ गंगा उतर कर वन को ओर जाते हुए राम लक्ष्मण को दिखावेंगे जिनके अलौकिक सौन्दर्य के कारण—

ाँव गाँव अस होइ अनंदू। देख भानुकुल कैरव चंदू॥
जो यह समाचार सुनि पावहिं। ते नृपरानिहि दोषलगावहिं॥

ौर कहते हैं—

न्द भूमि वन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा॥
ग्य विहँग मृग काननचारी। सफल-जनम भे तुमहि निहारी॥
हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरस भरि नयन तुम्हारा॥

जायसी उसे कलिंग देश में ले जाकर जहाज़ पर चढ़ावेगा और राजा रत्नसेन के साथ सिंहलद्वीप में उतार कर प्रेमपथ का माधुर्य और त्याग दिखावेगा, फिर चित्तौरगढ़ लाकर चिता पर बैठी पद्मावती (पद्मिनी) के सतीत्व की अद्भुत दीप्ति का दृश्य सम्मुख करेगा। चंदबरदाई उसे प्राचीन काल के शूर सामन्तों की आन और नोक झोंक दिखावेगा। इस प्रकार विद्याभ्यासी पुरुष बड़े बड़े लोगों की प्रतिमा से अपने भावों को पुष्ट करेगा। प्रत्येक युग और प्रत्येक देश के महान् पुरुष उसके सामने हाथ बाँधे इस प्रकार खड़े रहेंगे जिस प्रकार मंत्रवेत्ता के आह्वान पर देवता उपस्थित होते हैं।

पढ़ते समय हमें विद्वान् और प्रतिभाशाली पुरुषों के

अनुसार कार्य करना, दूसरों की अधीनता स्वीकार करना स्वाभिमानी पुरुषों को बड़ा कड़ुवा जान पड़ता है। ऐसे अवसर पर यदि वे इस बात का स्मरण करें तो बहुत ही अच्छा है कि अवसर थे जिनमें बड़े बड़े विजयी हुए हैं वे आज्ञा मानने में वैसे ही तत्पर थे जैसे आज्ञा देने में। बहुत से ऐसे अवसर आते हैं जब स्वयं के मार्ग पर स्थिर रहने की उचित दृढ़ता नहीं रहती मुझको और हम अपने आधीन ही आकर काम करना चाहते हैं। ऐसे अवसरों पर हमें गिरधर की इस कविताओं का स्मरण करना चाहिए—

बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हँसाय॥

अस्तु, पढ़ने का एक लाभ तो यह हुआ कि उससे हम समय पड़ने पर शिक्षा, उत्साह और शांति प्राप्त कर सकते हैं। इसके द्वारा हमें ऐसे ऐसे शब्द प्राप्त होते हैं जिन्हें लेकर जीवन के जीवन संग्राम में हम अपने पास रख सकते हैं। इससे हमें उत्तम और उत्कृष्ट विचारों का आभास तथा उत्तम कार्यों में प्रेरणा मिलती है। एक बार एक सरदार ने राजा की इच्छा के विरुद्ध कोई उचित और न्यायसंगत कार्य करने के विषय में दूसरे सरदार से परामर्श करते हुए कहा—"यह महाराज, इच्छाओं का लोप आप जानते हैं, मृत्यु सामने रखती है।" दूसरे सरदार ने यह उत्तर दिया—"तब तो मुझमें और आप में केवल इतना ही अन्तर है कि मैं आज मरूँगा और आप

करूं।" इस 'अप्रिय गर्भित' वाक्य से किसका उत्साह नहीं बढ़ेगा, किसका चित्त नहीं दृढ़ होगा? कोई छोटा है या बड़ा, यह कोई बात नहीं, मुख्य बात यह है कि जो जिस श्रेणी में है वह उसके धर्म का पालन करता है या नहीं। साधारण विद्या बुद्धि का मनुष्य भी यदि मर्यादा का ध्यान रखते हुए धर्मपूर्वक अपना कार्य करता जाय तो वह उसी प्रकार सफलमनोरथ हो सकता है जिस प्रकार कोई बड़ा बुद्धिमान मनुष्य। इस विषय पर मुझे बहुत कहने की आवश्यकता नहीं। पढ़ने का बड़ा भारी और अलभ्य लाभ यह है कि उससे चित्त, शुद्ध भावनाओं और प्रौढ़ विवेचनाओं से पूर्ण हो जाता है। जब कभी जी चाहे मनुष्य चुपचाप बैठ जाय और जो कुछ उसने पढ़ा हो उसका चिंतन करते हुये उपयोगी और आनंदप्रद विचारों की धारा में मग्न हो जाय, इसके लिये उसे किसी प्रकार के बाहरी आधार की आवश्यकता नहीं। खाली बैठ रहने के समय—जैसे रेल नौका आदि की यात्रा में—हमारे लिये यह एक अच्छा लाभकारी मानसिक व्यायाम रक्खा हुआ है कि हम किसी अच्छे ग्रंथकार की कोई पुस्तक उठालें और उसकी बातों को, उसकी चमत्कारपूर्ण युक्तियों को तथा उसके मनोहर दृष्टान्तों को, हृदय में इस क्रम से धारण करते जाँय कि जब अवसर पड़े तब हम उन्हें उपस्थित कर सकें। हृदय का यह भंडार ऐसा होगा जो कभी ख़ाली न होगा, दिन दिन बढ़ता जायगा। इस प्रकार हृदय में संचित किए हुए भाव

और दृष्टान्त मोतियों के समान होंगे जिनकी आभा कभी नष्ट या क्षीण नहीं होती।

—हिन्दी-गद्यपद्य-संग्रह से

प्रश्न

(१) अध्ययन से क्या क्या लाभ है ?
(२) पढ़ने के एक दो लाभ संक्षेप में लिखो।
(३) इतिहास के पढ़ने से क्या शिक्षा मिलती है ?
(४) "कहुँ सुन्दर घनश्याम" "घहरात है" इस पद का अर्थ लिखो।

१—कबीर के दोहे।

कबिरा प्रेम न चाखिया, चाखि न लाया साव।
सूने घर का पाहुना, ज्यों आवै त्यों जाय ॥ १ ॥
बिरह भुअंगम तन बसै, मंत्र न लागे कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै तो बौरा होइ ॥ २ ॥
पूत पियारो पिता को, गोहन लागा धाइ।
लोभ मिठाई हाथ दे, आपन गया भुलाइ ॥ ३ ॥
क्या कमंडल भर लिया, अजर निरमल नीर।
तन मन जोबन भरि पिया, प्यास न मिटी शरीर ॥ ४ ॥
आस एक जिय राम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै, ते भी मरै पियास ॥ ५ ॥
ढोल दमामा दुड़बड़ी, सहनाई संग भेरि।
अवसर चले बजाइ करि, है कोइ रखै फेरि ॥ ६ ॥

यह तन तो सब बन भया, कर्महिं भये कुल्हारि।
आपहि आप को काटिहैं, कहै कबीर बिचारि ॥ ७ ॥
उनते कोइ न आवई, जा सौं पूछूँ धाइ।
इन ते सबै पठाइए, मार लदाइ लदाइ ॥ ८ ॥
आगा जीय जग मरै, लोग मरी मरि जाइ।
सोइ मुए धन संचते, सो उबरै जो खाय ॥ ९ ॥
कबिराई संसार की, झूठी माया मोह।
जेहि घर जिता बधावना, तेहि घर तिता अँदोह ॥ १० ॥
स्वामी होना सो रहा, दूरा होना दास।
गाँडर आनी ऊन को, बाँधी चरै कपास ॥ ११ ॥
कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धरी खटाइ।
राजा दुवरा यों फिरै, ज्यों हरिआई गाइ ॥ १२ ॥
कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धरी बधाइ।
देई पैसा ब्याज को, लेखा करता जाइ ॥ १३ ॥
कबिरा इस संसार को, समझाऊँ कै बार।
पूछ जो पकड़ै भेड़ का, उतरा चाहै पार ॥ १४ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकै आखर पीउ का, पढ़ै सो पंडित होय ॥ १५ ॥
एक कनक अरु कामिनी, विषफल किए उपाय।
देखे ही ते विष चढ़ै, खाए ...
मूरख संग न ...
कदली सीपि ...

काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, रहै राम की ओट ॥ १८ ॥

सन्त न छाँड़ै सन्तई, कोटिक मिलैं असन्त।
चन्द भुअंगम बैठियो, सीतलता न तजन्त ॥ १९ ॥

कबिरा खालिक जागिया, और न जागै कोय।
जागै बिषयी बिष भरा, दास बन्दगी होय ॥ २० ॥

कबिरा हरदी पीयरी, चूना उज्जर भाइ।
राम सनेही यों मिले, दूनों बरन गँवाइ ॥ २१ ॥

मूआ मूआ क्या करै, कहा सुनावै लोग।
मौंढ़ा गाढ़ि जिन मुखदिया, सोई पूरन जोग ॥ २२ ॥

जाको जेता निरमया, ताको तेता होय।
रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटै कोय ॥ २३ ॥

बन्द मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जिनके राम अधार ॥ २४ ॥

जो ऊगा सो अथाइहै, फूला सो कुम्हिलाय।
जो चुनिया सो ढहि परै, जो आया सो जाय ॥ २५ ॥

- केरा बुदबुदा, ऐसी हमरी जात।
दिना छिपि जाहिंगे, तारे ज्यों परभात ॥ २६ ॥

अचंभा देखिया, हीरा-हाट बिकाय।
हारे बाहिरा, कौड़ी बदलै जाय ॥ २७ ॥

यह तन तो सब बन भया, कर्महि भये कुल्हारि।
आपहि आप को काटिहैं, कहै कबीर विचारि ॥ ७ ॥
उनने कोइ न आवई, जा सों पूछूं धाइ।
इत ने सबै पठाइए, भार लदाइ लदाइ ॥ ८ ॥
आसा जीव जग मरै लोग मरी मरि जाइ।
सोइ मुए धन संचते सो उबरै जो खाय ॥ ६ ॥
कबिराइ संसार की, झूठी माया मोह।
जेहि घर जिता बधावना, तेहि घर तिता अदोह ॥१०॥
स्वामी होना सो रहा, दूरा होना दास।
गाँडर आनी ऊन को, बाँधी चरै कपास ॥ ११ ॥
कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धरी खटाइ।
राजा दुवरा त्यों फिरै, ज्यों हरिआई गाइ ॥ १२ ॥
कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धरी बधाइ।
देई पैसा ब्याज को, लेखा करता जाइ ॥ १३ ॥
कबिरा इस संसार को, समझाऊँ कै बार।
पूछ जो पकड़े भेड़ का, उतरा चाहे पार ॥ १४ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकै आखर पीउ का, पढ़ै सो पंडित होय ॥ १५ ॥
एक कनक अरु कामिनी, विषफल किए उपाय।
देखे हो तें विष चढ़ै, खाए सौं मरि जाय ॥ १६ ॥
मूरख संग न कीजिए, लोहा जल न तिराइ
कदली सीपि भुजंगमुख, एक बुन्द तिहुँ भाइ ॥ १७ ॥

काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, रहै राम की ओट ॥ १८ ॥

सन्त न छाँड़े सन्तई, कोटिक मिलें असन्त।
चन्द भुजंगम बैठिये, सीतलता न तजन्त ॥ १९ ॥

कबिरा खालिक जागिया, और न जागै कोय।
जागै बिषयी बिष भरा, दास बन्दगी होय ॥ २० ॥

कबिरा हरदी पीअरी, चूना उज्जर भाइ।
राम सनेही यों मिले, दूनों बरन गँवाइ ॥ २१ ॥

मूवा मूवा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
औंढ़ा गढ़ि जिन मुरदिया, सोई पूरन लोग ॥ २२ ॥

जाको जैसा निरमया, ताको तैसा होय।
रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जौं सिर कूटै कोय ॥ २३ ॥

चन्द मुआ योगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जिनके राम अधार ॥ २४ ॥

जो ऊगा सो अथइहै, फूला सो कुम्हिलाय।
जो चिनिया सो ढहि परै, जो आया सो जाय ॥ २५ ॥

पानी केरा बुदबुदा, ऐसो हमरो जात।
एक दिना छिपि जाहिंगे, तारे ज्यों परभात ॥ २६ ॥

एक अचंभा देखिया, हीरा हाट बिकाय।
परखन हारे बाहिरा, कौड़ी बदले जाय ॥ २७ ॥

लाग पलीता जग दुखी, सुखी न देखा कोय।
जहाँ कबीरा पग धरै, तहँ टुक धीरज होय ॥ २८ ॥

निन्दक दूर न कीजिए, दीजै आदर मान।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आनहिं आन ॥२९॥

कबिरा घास न निन्दिए, जो पावों तल होय।
ऊड़ि पड़ै जो आँखि में, खरा दुहेला होय ॥ ३० ॥

आपन पौ न सराहिए, और न कहिए रंक।
ना जानौ किस रूख तल, कूड़ा होय करंक ॥ ३१ ॥

सरपै दूध पिलाइए, दूधै विष होय जाय।
ऐसा कोई ना मिला, जो सरपै विष खाय ॥ ३२ ॥

जानौ इहै बड़प्पना, सरसै पेड़ खजूरि।
पंथी छाँह न बैठिए, फल लागै ते दूरि ॥ ३३ ॥

वस्तु कहीं ढूंढै कहीं, केहि विधि आवै हाथ।
कह कबीर तब पाइए, भेदी लीजै साथ ॥ ३४ ॥

द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी का खाय।
कबहुं धनी नेवाजई, जो दर छांड़ि न जाय ॥ ३५ ॥

प्रेम बिना जो भगति है, सो निज डिंभ विचार।
उदर भरन के कारने, जनम गंवायो सार ॥ ३६ ॥

गुरु भगती अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
बिना साँच पहुंचै नहीं, महा कठिन व्योहार ॥ ३७ ॥

दरस बड़ाई देखि करि, भगति करै संसार।
जब देखै कछु हीनता, औगुन धरै गँवार ॥ ३८ ॥
कबिरा सीप समुद्र की, रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै, स्वाति बूँद की आस ॥ ३९ ॥
पपिहा का पन देख करि, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ न बोरी चंच ॥ ४० ॥
ऊँचा जाति पपीहरा, पिये न नीचो नीर।
कै सुरपति को जांचई, कै दुख सहै सरीर ॥ ४१ ॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर होय।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय ॥ ४२ ॥
सूरे के सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिबरता के तन नहीं, सुरत बसे पिउ माहिं ॥ ४३ ॥
दाता के है धन धना, सूरे के सिर बीस।
पतिबरता के तन सही, पति राखै जगदीस ॥ ४४ ॥
कबिरा संगति साधु की, ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥ ४५ ॥
सुख में सिधें सिल पड़े, नाम हृदय को जाय।
बलिहारी वा दुःख की, पल पल नाम जपाय ॥ ४६ ॥
करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूकत फिरै, सुनी सुनाई बात ॥ ४७ ॥
साखी लाय बचन करि, इत उत अक्षर काटि।
कह कबीर कब लगि जिये, झूठी पत्तल चाटि ॥ ४८ ॥

यदि सुनि के समझावहीं मन नहिं बाँधै धीर।
रोवै का संसय पड़ा, यों कह दास कबीर॥ ४१॥

प्रश्न

(१) निम्नस्थ भाषा अशुद्ध शब्द ... इनके शुद्ध शब्द लिखो।

(२ [illegible]) और [illegible] इन शब्दों का अर्थ लिखो

(३) कबीर कौन थे ? इनके बारे में जो जानते हो लिखो।

४—लिखने के साधन

वनचरावस्था से बाहर निकलने का प्रयत्न जिस समय मनुष्य करता है उसे एक नया जन्म सा मिलता है। इस उत्क्रमण को शास्त्रवेत्ता वानर से नर अवस्था में आना कहते हैं। इस अवस्था में बुद्धिविकास होता है। बुद्धिविकास से सभ्यता उत्पन्न होती है। सभ्यता को वृद्धिगत करने के लिये विचार विकास और विचार-प्रचार की आवश्यकता होती है। इसी समय भाषा की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर मानसिक ग्रन्थों का जन्म होता है। ऐसे ग्रन्थ अति मूल्यवान् समझे जाते हैं। क्योंकि इन्हीं ग्रन्थों में परमेश्वर की अगाध लीला का प्राथमिक वर्णन ग्रथित होता है। ऐसे ग्रन्थों का कितना सम्मान होता है, इसकी कल्पना करनी हो तो जगन्मान्य वेदों का स्मरण करना चाहिये। वेदों ने भारतीय पण्डितों को तो प्रेम से पागल किया ही है, परन्तु मैक्स मूलर आदि पाश्चात्य पण्डितों को भी पागल कर डाला है।

मानसिक ग्रन्थों का स्मरण रखना मनुष्य को जिस समय कठिन हो जाता है उस समय वह उन्हें लिखने की चेष्टा करता है। लेखन-कला उत्पन्न होने से लिखित ग्रंथ उत्पन्न होते हैं। धीरे धीरे पुस्तक-कल्पना व्यक्त होकर पुस्तकें लिखी जाने लगती हैं। पुस्तक-लेखन से पुस्तक-संग्रह और पुस्तक-संग्रह से पुस्तकालय उत्पन्न होते हैं।

मानसिक ग्रन्थ मन से उत्पन्न होते हैं। उन्हें कण्ठ करना पड़ता है। यही स्मृति-ग्रन्थ हैं। इनसे स्मरण रक्खे हुए विचारों का प्रचार होता है। इनमें प्राचीन कथायें, कवितायें, पद और गीत आदि होते हैं। पुराने धार्मिक और इन्द्र-जालिक मन्त्रतन्त्र तथा पैशाचिक बातें भी इसी तरह के ग्रंथों में समाविष्ट रहती हैं। ये एक विचित्र भाषा में होती हैं। इन्हीं भाषाओं से संसार की मनोरम भाषाओं ने जन्म लिया है। ऐसी भाषाओं का प्रचार-ऐसे स्मृति ग्रंथों का ज्ञान-प्रपिता-मह से पितामह को, पितामह से पिता को और पिता से पुत्र को हुआ करता था। इससे स्मरण शक्ति बहुत बढ़ती थी। इसी शक्ति की कृपा से हमारे पूर्वजों ने वेद, उपनिषद्, स्मृति आदि ग्रन्थों को हज़ारों वर्ष तक अक्षुण्ण रक्खा। यदि वे ऐसा न करते तो इस समय के अवशिष्ट ग्रन्थ भी कब के लुप्त हो गये होते। स्मृति-ग्रन्थों का प्रचार केवल भारतवासियों ही ने नहीं किया। हिब्रू भाषा के ग्रन्थों का प्रचार भी प्राचीन काल में इसी तरह होता था। ग्रीस

महाकवि होमर के महाकाव्य का बड़ा आदर है। उसका प्रचार श्रवण परम्परा ही से हुआ था। ईसा के ९३६ वर्ष पहले होमर के महाकाव्य इलियड और आडीसी प्रणीत हुये थे। यह महाकवि अन्धा हो गया था। यह अपने काव्य को गाते हुये भ्रमण किया करता था। इन काव्यों को होमर के मुख से सुनकर ही लोगों ने याद कर लिया था। जापानियों के कोजिकी ग्रंथ का प्रचार भी इसी तरह हुआ था। चीन में लेखन और मुद्रण-कला का प्रचार होने के पहले वहाँ के पुराण, नीति, उपदेश और धर्म-ग्रंथों का प्रचार भी स्मृति-पथ से ही हुआ था।

मानसिक ग्रंथों की वृद्धि, होते होते उनका याद रखना कठिन हो गया। इससे उनको लिख रखने की ज़रूरत हुई। पर काग़ज़ पहले था नहीं। इससे पत्थर, शिला, हड्डी, सींग, हाथीदांत, मिट्टी के पक्के पात्र, और ईंट आदि पदार्थों पर ग्रंथ लिखे जाने लगे। भूगर्भ-शास्त्र-वेत्ताओं का मत है कि सबसे पहले पत्थरों और शिलाओं पर हथियारों से खोद कर लोग अपने मन की बात लिखते थे। संसार के कितने ही अति प्राचीन ग्रन्थ चित्रलिपि द्वारा हड्डी, पत्थर और शिला आदि पर लिखे गये हैं। पाठक शायद यह जानना चाहें कि यह चित्रलिपि क्या चीज़ है। यह वह लिपि है जिसमें मनुष्य अपने मन के भाव चित्रों द्वारा व्यक्त करते थे। इस लिपि का एक नमूना आपको बतलाते हैं। अलास्का-प्रान्त में एक इस

तरह का लेख मिला है। उसका संक्षिप्त वर्णन सुनिए:—

एक असभ्य मनुष्य मछली का शिकार करने गया था। उसे यह बतलाना था कि मैं नाव से गया था। इसलिये उसने पहले एक मनुष्य का चित्र बनाया। फिर एक और मनुष्य का चित्र बनाकर उसके दोनों हाथों पर एक डांड़ रख दिया। पहले मनुष्य-चित्र का हाथ दूसरे की तरफ उठा कर उसने यह सूचित किया कि इस तरह मैं नाव पर शिकार खेलने गया था। रात को वे दो झोंपड़ी वाले एक टापू में सोये। इस बात को उसने इस तरह ज़ाहिर किया। एक मनुष्य का चित्र बनाकर कान पर हाथ लगाया। इससे सोना सूचित हुआ। फिर एक गोल दायरा खींचकर उसके भीतर दो बिन्दु दे दिये। इससे उसने दो झोंपड़ों के टापू का ज्ञान कराया। इसके अनन्तर वह एक और टापू में गया। इसे बताने के लिये उसने फिर एक मनुष्याकृति बनाई और उसके आगे एक दायरा खींचा। वहां पर उसे एक और आदमी मिल गया। वे दोनों उस टापू में सोये। अतएव एक हाथ को कान पर रख कर दूसरे हाथ की दो अँगुलियाँ उठा कर उसने इस बात को दिखाया और वैसा ही चित्र भी उसने बनाया। उन दोनों ने मछली मारी। इसके लिए उसने मछली का चित्र बनाया और मनुष्याकृति खोद कर उसकी दो अँगुलियाँ उठाईं। मछली का शिकार इन्होंने धनुष बाण से किया था। अतएव मनुष्य का आकार खींच कर

उसके हाथ में दिया। इसी तरह उसने और भी कई चित्र खोद कर अपने मन का भाव प्रकट किया। इसी का नाम है चित्रलिपि। ईजिप्ट में इस तरह के हज़ारों लेखों का पता लगा है। विद्या की यह एक जुदा शाखा ही होगई है। अनेक विद्वान् इस विषय की योग्यता सम्पादन करने और प्राचीन चित्रलिपि पढ़ने के लिये वर्षों परिश्रम करते हैं।

चीनवालों ने इस चित्रलिपि को विशेष उन्नत किया है। जापान, कोरिया और तिब्बत आदि में भी, चीन के सम्पर्क होने के कारण, यह लिपि प्रचलित थी। जापान में इसी तरह की एक और लिपि का प्रचार था। उसे इरोहर कहते हैं। उसका इतिहास बड़ा मनोरञ्जक है। मैं एक साल तक जापान में था उस समय इस विषय की कुछ छान बीन भी मैंने की थी। उससे मेरी यह धारणा हुई है कि जापान के इतिहास का भारत के प्राचीन इतिहास से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य था।

अमेरिका के आदिम निवासी, जिन्हें असभ्य इण्डियन कहते हैं, अब तक इस चित्रलिपि का व्यवहार करते हैं।

ईंटों और पत्थरों पर लिखे हुये चित्रलिपिग्रन्थ सब से अधिक मिश्र देश में हैं। कारनाक में पड़े २ खम्भों के ऊपर अनेक शिलालेख अब तक मौजूद हैं। ये ईसा के ४००० वर्ष ... के हैं। इस देश का प्राचीन इतिहास ईंटों के ऊपर चित्रलिपि में लिखा हुआ है। इस ग्रन्थ-भण्डार से स्पष्ट

करने योग्य दूसरे किसी भी देश में शक्ति नहीं है। मिश्रवालों में अद्भुत ग्रन्थ-लेखन-शक्ति थी। इन लोगों को सरस्वती ने इतना पागल कर दिया था कि वृक्ष, पाषाण, पर्वत, ईंट चमड़ा इत्यादि जो कुछ मिला है सब पर इन्होंने लिख मारा है। मिश्रवालों ने पहले पशु-पक्षियों आदि के चित्र खोद कर अपने मन के भाव प्रदर्शित किये। धीरे धीरे जब इन्हें बहुत लिखने की ज़रूरत पड़ने लगी तब यह चित्रलिपि त्रासदायी मालूम होने लगी। अतएव इन लोगों ने उस लिपि का संशोधन करके कुछ सुलभ चिन्ह निर्माण किये। तत्पश्चात् इन्होंने कुछ समय बाद अक्षर बनाये। इन लोगों के बहुत से ग्रन्थ इन तीनों प्रकार की मिश्र-लिपियों में लिखे हुये हैं।

धीरे २ लिपि का विस्तार होने लगा। इस कारण ग्रन्थ-साहित्य की आवश्यकता लोगों को अधिकाधिक मालूम होने लगी। फल यह हुआ कि कुछ दिनों में असीरिया, मोस आदि देशों में ध्वनि के अनुसार लेखन-प्रणाली का जन्म हुआ। इस समय पत्थरों और ईंटों पर लिखने से लोगों को तकलीफ़ होने लगी। इससे अन्य साधन ढूंढ़ने का प्रयोजन हुआ। तब लोगों ने नरम नरम लकड़ियों के तख़्तों के ऊपर लिखना शुरू किया। बाँस पर लिखने में चीनी लोगों ने बड़ी कुशलता प्राप्त की। बुद्धकालीन अनेक लेख भारतवर्ष में लकड़ी के ऊपर लिखे हुये पाये गये हैं। चीन की तो बात ही नहीं। वहाँ तो ऐसे असंख्य लेख मिलते हैं।

लकड़ी पर लिखने का रवाज भारतवर्ष में अभी तक था। मेरे पितामह पूर्वकालीन विद्योपार्जन की कष्टदायकता के विषय में मुझसे बहुधा बातें किया करते थे। वे कहते थे कि हम लोगों ने तख्ते के ऊपर ईंट का चूर डाल कर बांस की लकड़ी से 'श्रीगणेशाय नमः' से प्रारम्भ करके अन्त तक अध्ययन किया था। मैंने मारवाड़ियों की दुकानों पर रङ्गीन तख्तों पर रङ्ग से लिखने का रवाज बहुत जगह देखा है। यदि साधनों की दुष्प्राप्यता के कारण अब तक यह दशा थी तो पुराने समय की असुविधाओं का क्या पूछना है। अतएव धन्य है उन भारतवर्षीय महात्माओं को जिन्होंने भोजपत्र पर अमूल्य ग्रंथ-रत्न लिख डाले हैं। लकड़ी पर लिखे हुये ग्रन्थ ग्रीस और रोम आदि देशों में भी पाये जाते हैं।

लकड़ी और भोजपत्र के पश्चात् लोगों ने अन्य वृक्षों के पत्तों पर भी लिखना शुरू किया। ताड़पत्र पर भारत में लाखों ग्रन्थ लिखे गये हैं।

जिस समय संसार की सभ्यता इतनी उच्च स्थिति पर पहुंच गई उस समय लेखों का समूह पुस्तकों का रूप धारण करने लगा।

एक बात लिखने को रह गई। वह यह कि भोजपत्र ... लिखने के पहले भारत में तांबे आदि के टुकड़ों पर ... लिखे जाते थे।

भारतवर्ष में सोने और तांबे के पत्रों का प्रचार बहुत पहले से था। वेदों में भी इस बात का उल्लेख है। बुद्धकालीन अनेक लेख तांबे और लोहे पर भी लिखे मिले हैं। तक्षशिला में अनेक ताम्रपत्रों पर लेख पाये गये हैं। भाड़गांव में सुवर्ण पत्रों पर लेख मिले हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि धातु-पत्रों पर लेख लिखने का तरीक़ा भारतवासी आर्यों ने ही निकाला है। भारतवर्ष से ही यह तरीक़ा अन्य देशों में पहुंचा है। चीन, जापान आदि देशों में भी धातु पत्रों पर लेख लिखने की प्रणाली थी और अब भी है। ईजिप्ट, असीरिया ग्रीस आदि पाश्चात्य देशों में भी, किसी समय, धातुपत्रों के ऊपर ग्रन्थ लिखे जाते थे। कुछ विद्वानों का ख़याल है कि भारत ने यह तरीका बाबुल वालों से सीखा था। पर मेरी सम्मति इसके विपरीत है।

पत्थरों, हड्डियों, तांबे और लोहे के पत्रों पर लोग लोहे की शलाकाओं और औज़ारों से अक्षर खोदते थे। यह बड़ी मेहनत का काम था। कुछ लोग यही पेशा करते थे। इससे अभ्यास के कारण वे यह काम बहुत अच्छा और बहुत जल्दी करते थे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि भारतवर्ष में धातु-पत्रों पर लेख उत्कीर्ण करने वाले कारीगर गन्धक तेज़ाब आदि रसायनों का भी उपयोग करते थे। इनके उपयोग से अक्षराङ्कन में विशेष सुगमता होती था।

प्राचीन समय से ही भारत में चित्रकला का प्रचार चला

आता है। सुन्दर रंगों से जैसे चित्र बनाये जाते हैं वैसे ही अक्षर लिखने और उत्कीर्ण करने में भी रंग काम में लाया जाता था। चित्र बनाने में ब्रुश का प्रयोग करना पड़ता है। ब्रुश बनाना भी प्राचीन भारतवासी जानते थे। गिलहरी की पूँछ के बालों से प्रायः ब्रुश बनाये जाते थे। इन ब्रुशों से धीरे धीरे लिखने का भी काम लिया जाने लगा था। परन्तु ब्रुश से लिखने में देर लगती थी। इस कारण लेखनी का जन्म हुआ। क़लम का आदिम रूप ब्रुश ही है।

चीनी और जापानी लोग अब भी ब्रुश से ही लिखते हैं। कुछ दिनों बाद कोयले से तख्ते आदि पर लोग लिखने लगे। तब उन्हें स्याही बनाने की सूझी। पहले कोयले से ही स्याही बनी होगी, उसके बाद और चीज़ों से।

जब से भोजपत्र और ताड़पत्र पर लोग लिखने लगे तब से लेखनकला का विशेष प्रचार हुआ। गोसिंह विहार में भारतवर्ष के अतिप्राचीन कितने ही बुद्धिकालीन ग्रन्थ भोजपत्रपर लिखे हुए पाये गये हैं। इन ग्रन्थों के कुछ अंश पेरिस और सेन्टपिटर्सबर्ग में अब तक रक्खे हैं। ये ग्रन्थ कम से कम५०० वर्ष ईसा के पहले लिखे गये होंगे। इतने प्राचीन होने पर भी ये ग्रन्थ स्याही के लिखे हुये हैं, और स्याही भी अच्छी है। प्राचीनता के कारण भोजपत्र और ताड़पत्र भारतवासियों को .. पूज्य हो गये हैं कि ये अब भी धार्मिक संस्कारों और

धार्मिक प्रसंगों में उसका व्यवहार करते हैं। पत्र मन्त्र बहुधा इन्हीं पर लिखे जाते हैं।

एक समय था जब चमड़े पर भी पुस्तकें लिखी जाती थीं। विद्वानों का अनुमान है कि किसी समय संसार के सारे प्राचीन देश चमड़े पर लिखा करते थे। भारतवर्ष में भी प्राचीन समय में चमड़े का उपयोग इस काम के लिए होता था। पर "अहिंसा परमो धर्मः" का उपदेश शुरू होने के कारण चमड़े का व्यवहार लिखने के काम में कम होता चला। तथापि व्याघ्र, सिंह, हरिण आदि जानवरों के चमड़े का उपयोग पवित्र कामों में अब भी होता है। परन्तु अपवित्रता के ख़याल से लोग चमड़े का व्यवहार पुस्तक लिखने में करना अब पसन्द नहीं करते। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के पदवी-दान-पत्रों (Diploma) में चमड़े का व्यवहार गवर्नमेन्ट इस समय भी करती है पुस्तकों की जिल्द बाँधने में तो चमड़े का व्यवहार सर्वत्र ना है।

ईजिप्ट देश में प्राचीन काल से चमड़े पर लोग लिखते थे। चमड़े पर लिखने का तरीका यहाँ परगामम् के राजा ने सबसे पहले निकाला। उस राजा की यादगार में उस समय से चमड़े के काग़ज़ को लोग पार्चमेंट (Parchment) कहने लगे। पार्चमेंट की कहानी बड़ी मनोरञ्जक है। उसे थोड़े में मैं सुनाता हूँ।

सीरिया देश का सेल्यूकस निकेटर बहुत विख्यात राजा

सभ्यता फैलाई वैसे ही नील नदी के पवित्र तट से यूरोप में सभ्यता फैली। इस नदी के जल में पापिरस नाम की एक वनस्पति पैदा होती थी। इसीसे ईजिप्ट के निवासियों ने कागज़ बनाया। ईजिप्ट के अतिप्राचीन ग्रन्थ इसी पापिरस कागज़ पर हैं। इनका सुप्रसिद्ध पुराण "मृत मनुष्यों का ग्रन्थ" (book of the dead) पापिरस पर ही लिखा हुआ था। यह ग्रन्थ इन लोगों का गरुड़पुराण है। पापिरस कागज़ ईजिप्ट ही में बनता था। सम्पूर्ण पश्चिमी वाणिज्य भी इन्हीं लोगों के हाथ में था। इसीसे इन लोगों की इच्छा के विरुद्ध परगामम् में कागज़ न पहुंच सका। इस पापिरस (papyrus) से ही अंगरेज़ी शब्द 'पेपर' (paper) बना है।

संसार की सभ्यता की वृद्धि कागज़ स्याही और क़लम ने जितनी की है उतनी और किसी चीज़ ने नहीं की। यदि लिखने के ये साधन प्राप्त न होते तो संसार का इतिहास आज कुछ और ही तरह का होता।

('सरस्वती' से) पाण्डुरङ्ग खानखोजे।

प्रश्न

(१) कागज़ के आविष्कार का वृत्तान्त लिखो।

(२) पत्थर पर लिखे लेखों का क्या हाल जानते हो?

(३) अमरीका में लोग प्रथम किस पर लिखते थे?

(४) कलम का प्रयोग कैसे हुआ?

(५) पार्चमेंट के सम्बन्ध में क्या जानते हो?

५—स्वर्गीय संगीत

[द्रुतविलम्बित]

पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो !

पुरुष क्या, पुरुषार्थ हुआ न जो,
हृदय की सब दुर्बलता तजो !
प्रबल जो तुम में पुरुषार्थ हो—
सुलभ कौन तुम्हें न पदार्थ हो ?
प्रगति के पथ में विचरो, उठो,
पुरुष हो पुरुषार्थ करो, उठो ॥ १ ॥

न पुरुषार्थ बिना कुछ स्वार्थ है,
न पुरुषार्थ बिना परमार्थ है ।
समझ लो, यह बात यथार्थ है—
कि पुरुषार्थ वही पुरुषार्थ है ।
भुवन में सुख शान्ति भरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ २ ॥

न पुरुषार्थ बिना वह स्वर्ग है,
न पुरुषार्थ बिना अपवर्ग है ।
न पुरुषार्थ बिना क्रियता कहीं,
न पुरुषार्थ बिना प्रियता कहीं ।
सफलता वर तुल्य वरो, उठो,
पुरुष हो पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ३ ॥

न जिसमें कुछ पौरुष हो यहाँ,
सफलता वह पा सकता कहाँ?
अपुरुषार्थ भयंकर पाप है,
न उसमें यश है, न प्रताप है।
न कृमि-कीट-समान मरो, उठो,
पुरुष हो पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ४ ॥
मनुज जीवन में, जय के लिए
प्रथम ही दृढ़ पौरुष चाहिए।
विजय तो पुरुषार्थ बिना कहाँ,
कठिन है चिरजीवन भी यहाँ।
भय नहीं, भव-सिन्धु तरो, उठो,
पुरुष हो पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ५ ॥
यदि अनिष्ट अड़ें, अड़ते रहें।
विपुल विघ्न पड़ें, पड़ते रहें।
हृदय में पुरुषार्थ रहे भरा,
जलधि क्या, नग क्या, फिर क्या धरा?
दृढ़ रहो, ध्रुव धैर्य धरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ६ ॥
यदि अभीष्ट तुम्हें निज स्वत्व है,
प्रिय तुम्हें यदि मान महत्व है।
यदि तुम्हें रखना निज नाम है,
जगत में करना कुछ काम है।

मनुज ! तो श्रम से न डरो, उठो;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ७ ॥

प्रकट नित्य करो पुरुषार्थ को;
हृदय से तज दो सब स्वार्थ को।
यदि कहीं तुमसे परमार्थ हो—
यह विनश्वर देह कृतार्थ हो।
सदय हो, पर-दुःख हरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ८ ॥

[त्रोटक]

नर हो, न निराश करो मन को।
कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग में रह के कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो !
समझो, जिस में यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ १ ॥

सँभलो कि सु-योग न जाय चला,
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला ?
समझो जग को न निरा सपना,
पथ आप प्रशस्त करो अपना।

अखिलेश्वर है अवलम्बन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ २ ॥

जल-तुल्य निरन्तर शुद्ध रहो,
प्रबलानल ज्यों अनिरुद्ध रहो।
पवनोपम सत्कृतिशील रहो,
अवनीतलवत् धृतशील रहो।
कर लो नभ-सा शुचि जीवन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ३ ॥

जब है तुममें सब तत्व यहां,
फिर आ सकता यह सत्व कहां?
तुम सत्य-सुधा-रस पान करो,
उठ के अमरत्व-विधान करो,
दव-रूप रहो भव-कानन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ४ ॥

निज गौरव का नित ज्ञान रहे,
"हम भी कुछ हैं"—यह ध्यान रहे।
सब जाय अभी, पर मान रहे,
मरणोत्तर गुञ्जित गान रहे।
कुछ हो, न तजो निज साधन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ५ ॥

प्रभु ने तुमको कर दान किये,
सब वाञ्छित वस्तु-विधान किये।

मनुज ! तो श्रम से न डरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ७ ॥

प्रकट नित्य करो पुरुषार्थ को,
हृदय से तज दो सब स्वार्थ को ।
यदि कहीं तुमसे परमार्थ हो—
यह विनश्वर देह कृतार्थ हो ।
सदय हो, पर-दुःख हरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ८ ॥

[त्रोटक]

नर हो, न निराश करो मन को ।
कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग में रह के कुछ नाम करो ।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो !
समझो, जिस में यह व्यर्थ न हो ।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ९ ॥

सँभलो कि सुयोग न जाय चला,
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला !
समझो जग को न निरा सपना,
पथ आप प्रशस्त करो अपना ।

हुई न यों सु-मृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जिये;
मरा नहीं वही कि जो जिया न आप के लिए।
यही पशु-प्रवृत्ति है कि आप आपही चरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥ १ ॥
उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती;
उसी उदार से धरा कृतार्थ-भाव मानती।
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती;
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती।
अखण्ड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥ २ ॥
क्षुधार्त रन्तिदेव ने दिया करस्थ थाल भी,
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी।
उशीनर-क्षितीश ने स्व-मांस दान भी किया,
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-चर्म्म भी दिया।
अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे ?
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥ ३ ॥
सहानुभूति चाहिए, महा विभूति है यही;
वशीकृता सदैव है बनी हुई स्वयं मही।
विरुद्ध-वाद बुद्ध का दया-प्रवाह में बहा;
विनीत लोकवर्ग क्या न सामने झुका रहा ?
अहा! वही उदार है परोपकार जो करे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥ ४ ॥

तुम प्राप्त करो उनको न अहो !
फिर है किसका यह दोष कहो ?
समझो न अलभ्य किसी धन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ६ ॥

किस गौरव के तुम योग्य नहीं,
कब, कौन तुम्हें सुख भोग्य नहीं ?
जन हो तुम भी जगदीश्वर के,
(सब है जिसके अपने घर के)
फिर दुर्लभ क्या उसके जन को ?
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ७ ॥

करके विधि-वाद न खेद करो,
निज लक्ष्य निरन्तर भेद करो।
बनता बस उद्यम ही विधि है,
मिलता जिससे सुख की निधि है।
समझो धिक निष्क्रिय जीवन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ८ ॥

[पञ्चचामर]

वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे

विचार लो कि मर्त्य हो, न मृत्यु से डरो कभी;
मरो, परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी।

तभी समर्थभाव है कि तारता हुआ तरे,
यही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥ ८ ॥
—मैथिलीशरण गुप्त ।

प्रश्न

(१) " पुरुष हो पुरुषार्थ करो उठो" इस पद्य का क्या अर्थ है।,
(२) १, ५, और ८ वें पद्य का अर्थ लिखो।
(३) " नर हो न निराश करो मन को " के दूसरे पद्य के नं० १, ५, ७ पदों के अर्थ लिखो।
(४) अन्तिम पद्य का अर्थ लिखो।

६—व्यायाम

स्वास्थ्य के लिए भोजन, पानी, वायु आदि की जैसी आवश्यकता है वैसी ही परिश्रम तथा व्यायाम की भी है। प्रत्येक प्राणी को अपने भोज्य पदार्थ संग्रह करने के लिये यथेष्ट अङ्ग-चालना करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त उनको क्रीड़ा के लिये दौड़ते भागते देखा जाता है। जिसको जानवरों का "कुलेल" कहते हैं। इस विषय में वानर जाति और जीव-जन्तुओं से अधिक तत्पर है। किन्तु शोक का विषय है कि मनुष्य सबसे उच्च श्रेणी का होने पर भी इस कायिक क्रीड़ा के संबन्ध में इतर पशुओं की अपेक्षा भी गया बीता है। इसका कारण यह है कि अधिक विशेषतत्व लाभ करने के कारण सबको अपने उदर पूर्ण करने के लिये यथेष्ट अङ्ग चालना नहीं

रहो न भूल के कभी मदान्ध तुच्छ वित्त में,
सनाथ जान आप को करो न गर्व चित्त में।
अनाथ कौन है यहाँ त्रिलोकनाथ साथ हैं,
दयालु दीनबन्धु के बड़े विशाल हाथ हैं।
अतीव भाग्यहीन है अधीर भाव जो करे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥ ५ ॥
अनन्त अन्तरिक्ष में अनन्त देव हैं खड़े,
समक्ष ही स्वबाहु जो बढ़ा रहे बड़े बड़े।
परस्परावलम्ब से उठो तथा बढ़ो सभी,
अभी अमर्त्य अङ्क में अपङ्क हो चढ़ो सभी।
रहो न यों कि एक से न काम और का सरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥ ६ ॥
"मनुष्य मात्र बन्धु है" यही बड़ा विवेक है,
पुराणपुरुष स्वयंभू पिता प्रसिद्ध एक है।
फलानुसार कर्म के अवश्य बाह्य भेद हैं,
परन्तु अन्तरैक्य में प्रमाणभूत वेद हैं।
अनर्थ है कि बन्धु ही न बन्धु की व्यथा हरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥ ७ ॥
चलो अभीष्ट मार्ग में सहर्ष खेलते हुये,
विपत्ति विघ्न जो पड़ें उन्हें ढकेलते हुये।
घटे न हेलमेल हाँ, बढ़े न भिन्नता कभी,
अतर्क एक पन्थ के सतर्क पन्थ हों सभी।

अब हम प्रधान २ क्रीड़ाओं को संक्षेप से वर्णन करेंगे। मृगया (शिकार) यह मनुष्य जाति का आदि व्यवसाय होने के कारण अत्यन्त चित्ताकर्षक क्रीड़ा है। इसके गुणों के विषय में महाकवि कालिदास भी सहमत हैं। परन्तु यह क्रीड़ा क्रूर है और जन साधारण के हाथ से भी बाहर है।

घुड़दौड़ (अश्वारोहण) भी इसी तरह एक अत्यन्त आमोद-जनक व्यायाम है। परन्तु सब के अधिकार में नहीं।

नाव चलाना तथा तैरना भी जल प्रधान देशों में उपकारी और अनायासलभ्य व्यायाम है। इससे कभी २ मनुष्यों को जीवनरक्षा भी की जा सकती है। मुग्दर बैठक, आदि देशीय तथा डम्बल आदि विदेशीय व्यायाम शरीर का शीघ्र उत्कर्ष साधन करने पर भी प्रायः अकेले के कारण कष्ट साध्य हैं और केवल जीविकार्थी (पेशेदार) मल्लों के लिए उपयोगी है।

व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए। अतएव दण्ड, मुग्दर, डम्बल आदि से (जो प्रायः घरों में किये जाते हैं) क्रिकेट, फुटबाल, कुश्ती, कबड्डी आदि अत्युत्तम हैं। कारण न केवल इनके लिये मुक्त स्थान होना आवश्यक है प्रत्युत एकाधिक मनुष्यों के सम्मेलन होने के कारण ये सुखसाध्य भी होते हैं।

साधारण मनुष्यों के लिये वायुसेवन भी अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु यहाँ भ्रमण के साधन में ५ मिनट की दौड़ या १०, १५ मिनट की शीघ्र गति अधिक उपयोगी होती है।

करना पड़ता । विशेषतः उच्च श्रेणी के मनुष्य केवल मस्तिष्क चालना द्वारा ही अपना जीवन पालन करते हैं। किन्तु कायिक और मानसिक शक्तियों में साम्य स्थिर रखने के लिए उच्च श्रेणी के मनुष्यों को भी व्यायाम की अधिक आवश्यकता है।

पूर्व काल में हमारे देश में दंड, मुग्दर, बैठक, कुश्ती पटा आदि व्यायाम भिन्न भिन्न ग्रामों में न्यूनाधिक व्यवहृत किये जाते थे, किन्तु आजकल ये निस्सार और सरल, जातीय व्यायाम लुप्त होते जाते हैं। अंगरेजी शिक्षा प्राप्त युवकों के अन्याय ऊपर के कारण सभी प्रकार के "अखाड़े" आदि व्यायाम भी, मंडली समाज की दृष्टि से देखी जाती हैं। इन सबके स्थान में आजकल क्रिकेट फुटबाल, हाकी, टेनिस, आदि की अधिक चर्चा है। ये अच्छे होने पर भी सब के लिये सुगमसाध्य नहीं है। क्रिकेट से न केवल शरीर का उत्कर्ष साधन होता है प्रत्युत इससे मानसिक तथा नैतिक उन्नति भी होती है। क्योंकि खेल की हार जीत किसी एक व्यक्ति के ऊपर निर्भर नहीं। इङ्गलैण्ड में (जहां का क्रिकेट एक जातीय खेल है) एक प्रवाद है कि वाटरलू का युद्ध क्रिकेट ग्राउण्डों में जय किया गया था। फुटबाल, हाकी आदि खेल भी इसी प्रकार के हैं। इन खेलों में प्रत्युत्पन्नमतित्व, क्षिप्रता तथा चित्त की एकाग्रता और भिन्न ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का समय और बहुधा नैतिक सद्गुण भी क्रीड़ा-व्याज से लब्ध होते हैं।

अब हम प्रधान २ क्रीड़ाओं को संक्षेप से वर्णन करेंगे। मृगया (शिकार) यह मनुष्य जाति का आदि व्यवसाय होने के कारण अत्यन्त चित्ताकर्षक क्रीड़ा है। इसके गुणों के विषय में महाकवि कालिदास भी सहमत हैं। परन्तु यह क्रीड़ा क्रूर है और जन साधारण के हाथ से भी बाहर है।

घुड़दौड़ (अश्वारोहण) भी इसी तरह एक अत्यन्त आमोद-जनक व्यायाम है। परन्तु सब के अधिकार में नहीं।

नाव चलाना तथा तैरना भी जल प्रधान देशों में उपकारी और अनायासलब्ध व्यायाम है। इससे कभी २ मनुष्यों की जीवनरक्षा भी की जा सकती है। मुग्दर बैठक, आदि देशीय तथा डम्बल आदि विदेशीय व्यायाम शरीर का शीघ्र उत्कर्ष साधन करने पर भी प्रायः अकेले के कारण कष्ट साध्य हैं और केवल जीविकार्थी (पेशेदार) मल्लों के लिए उपयोगी हैं।

व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए। अतएव दण्ड, मुग्दर, डम्बल आदि से (जो प्रायः घरों में किये जाते हैं) क्रिकेट, फुटबाल, कुश्ती, कबड्डी आदि अत्युत्तम हैं। कारण न केवल इनके लिये मुक्त स्थान होना आवश्यक है प्रत्युत एकाधिक मनुष्यों के सम्मेलन होने के कारण ये सुखसाध्य भी होते हैं।

साधारण मनुष्यों के लिये वायुसेवन भी अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु घंटों भ्रमण के साधन में ५ मिनट की दौड़ या १०, १५ मिनट की शीघ्र गति अधिक उपयोगी होती है।

अब हम प्रधान २ क्रीड़ाओं को संक्षेप से वर्णन करेंगे। मृगया (शिकार) यह मनुष्य जाति का आदि व्यवसाय होने के कारण अत्यन्त चित्ताकर्षक क्रीड़ा है। इसके गुणों के विषय में महाकवि कालिदास भी सहमत हैं। परन्तु यह क्रीड़ा क्रूर है और जन साधारण के हाथ से भी बाहर है।

घुड़दौड़ (अश्वारोहण) भी इसी तरह एक आनन्द आमोद-जनक व्यायाम है। परन्तु सब के अधिकार में नहीं।

नाव चलाना तथा तैरना भी जल प्रधान देशों में उपकारी और मनोल्लासजनक व्यायाम है। इससे कभी २ मनुष्यों की जीवनरक्षा भी की जा सकती है। मुग्दर बैठक, आदि देशीय तथा डम्बल आदि विदेशीय व्यायाम शरीर का शीघ्र उत्कर्ष साधन करने पर भी प्रायः अकेले के कारण कष्ट साध्य हैं और केवल जीविकार्थी (पेशेदार) मल्लों के लिए उपयोगी हैं।

व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए। अतएव दण्ड, मुग्दर, डम्बल आदि से (जो प्रायः घरों में किये जाते हैं) क्रिकेट, फुटबाल, हाकी, कबड्डी आदि अत्युत्तम हैं। कारण कि केवल इनके लिये खुले स्थान होना आवश्यक है प्रत्युत एकाधिक मनुष्यों के सम्मेलन होने के कारण ये सुखसाध्य भी होते हैं।

साधारण मनुष्यों के लिये वायुसेवन भी अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु वहीं भ्रमण के साथ में ५ मिनट की दौड़ या १०, १५ मिनट की शीघ्र गति अधिक उपयोगी होती है।

करना पड़ता। विशेषतः उच्च श्रेणी के मनुष्य केवल मस्तिष्क चालना द्वारा ही अपना जीवन पालन करते हैं। किन्तु कायिक और मानसिक शक्तियों में सामञ्जस्य रखने के लिए उच्च श्रेणी के मनुष्यों को ही व्यायाम की अधिक आवश्यकता है।

पूर्व काल में हमारे देश में दंड, मुग्दर, बैठक, कुश्ती पटा आदि व्यायाम सभी श्रेणियों में न्यूनाधिक व्यवहृत किये जाते थे, किन्तु आजकल ये विशुद्ध और सरल जातीय व्यायाम लुप्त होते जाते हैं। आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवकों के अन्याय ऊधम के कारण सभी प्रकार के "अखाड़े" आदि व्यायाम को, मर्दलिया सम्प्रदाय की दृष्टि से देखी जाती है। इन सबके स्थान में आजकल क्रिकेट फुटबाल हाकी, टेनिस आदि की अधिक चर्चा है। ये अच्छे होने पर भी सब के लिये सुखसाध्य नहीं हैं। क्रिकेट से न केवल शरीर का उत्कर्ष साधन होता है प्रत्युत इससे मानसिक तथा नैतिक उन्नति भी होती है। क्योंकि खेल की हार जीत किसी एक व्यक्ति के ऊपर निर्भर नहीं। इङ्गलैण्ड में (जहाँ का क्रिकेट एक जातीय खेल है) एक प्रवाद है कि वाटरलू का युद्ध क्रिकेट मैदानों में जय किया गया था। फुटबाल, हाकी आदि खेल भी इसी प्रकार के हैं। इन खेलों में सतर्कता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, शिक्षा तथा चित्त की एकाग्रता और भिन्न ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का समय और बहुधा नैतिक सद्गुण भी व्यक्ति-व्यक्ति में लब्ध होते हैं।

अब हम प्रधान २ क्रीड़ाओं को संक्षेप से वर्णन करेंगे। मृगया (शिकार) यह मनुष्य जाति का आदि व्यवसाय होने के कारण अत्यन्त चित्ताकर्षक क्रीड़ा है। इसके गुणों के विषय में महाकवि कालिदास भी सहमत हैं। परन्तु यह क्रीड़ा क्रूर है और जन साधारण के हाथ से भी बाहर है।

घुड़दौड़ (अश्वारोहण) भी इसी तरह एक अत्यन्त आमोद-जनक व्यायाम है। परन्तु सब के अधिकार में नहीं।

नाव चलाना तथा तैरना भी जल प्रधान देशों में उपकारी और अनायासलभ्य व्यायाम है। इससे कभी २ मनुष्यों की जीवनरक्षा भी की जा सकती है। मुग्दर बैठक, आदि देशीय तथा डम्बल आदि विदेशीय व्यायाम शरीर का शीघ्र उत्कर्ष साधन करने पर भी प्रायः अकेले के कारण कष्ट साध्य हैं और केवल जीविकार्थी (पेशेदार) मल्लों के लिए उपयोगी हैं।

व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए। अतएव दण्ड, मुग्दर, डम्बल आदि से (जो प्रायः घरों में किये जाते हैं) क्रिकेट, फुटबाल, कुश्ती, कबड्डी आदि अत्युत्तम हैं। कारण न केवल इनके लिये मुक्त स्थान होना आवश्यक है प्रत्युत एकाधिक मनुष्यों के सम्मेलन होने के कारण ये सुखसाध्य भी होते हैं।

साधारण मनुष्यों के लिये वायुसेवन भी अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु घंटों भ्रमण के साधन में ५ मिनट की दौड़ या १०, १५ मिनट की शीघ्र गति अधिक उपयोगी होती है।

अब हम प्रधान २ क्रीड़ाओं का संक्षेप से वर्णन करेंगे। मृगया (शिकार) यह मनुष्य जाति का आदि व्यवसाय होने के कारण अत्यन्त चित्ताकर्षक क्रीड़ा है। इसके गुणों के विषय में महाकवि कालिदास भी सहमत हैं। परन्तु यह क्रीड़ा क्रूर है और जन साधारण के हाथ से भी बाहर है।

घुड़दौड़ (अश्वारोहण) भी इसी तरह एक अत्यन्त आमोद-जनक व्यायाम है। परन्तु सब के अधिकार में नहीं।

नाव चलाना तथा तैरना भी जल प्रधान देशों में उपकारी और अनायासलभ्य व्यायाम है। इससे कभी २ मनुष्यों की जीवनरक्षा भी की जा सकती है। मुग्दर बैठक, आदि देशीय तथा डम्बल आदि विदेशीय व्यायाम शरीर का शीघ्र उत्कर्ष साधन करने पर भी प्रायः अकेले के कारण कष्ट साध्य हैं और केवल जीविकार्थी (पेशेदार) मल्लों के लिए उपयोगी हैं।

व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए। अतएव दण्ड, मुग्दर, डम्बल आदि से (जो प्रायः घरों में किये जाते हैं) क्रिकेट, फुटबाल, कुश्ती, कबड्डी आदि अत्युत्तम हैं। कारण कि इनके लिये मुक्त स्थान होना आवश्यक है तथा अधिक मनुष्यों के सम्मेलन होने के कारण ये सुखसाध्य भी होते हैं।

साधारण मनुष्यों के लिये वायुसेवन भी अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु यहाँ भ्रमण के साथ में ५ मिनट की दौड़ या १०, १५ मिनट की शीघ्र गति अधिक उपयोगी होती है।

करना पड़ता। विशेषतः उच्च श्रेणी के मनुष्य केवल मस्तिष्क चालना द्वारा ही अपना जीवन पालन करते हैं। किन्तु कायिक और मानसिक चर्चा में सामञ्जस्य रखने के लिए उच्च श्रेणी के मनुष्यों को ही व्यायाम की अधिक आवश्यकता है।

पूर्व काल में हमारे देश में दंड, मुग्दर बैठक, कुश्ती पटा आदि व्यायाम सभी श्रेणियों में न्यूनाधिक व्यवहृत किये जाते थे, किन्तु आजकल ये निर्दोष और सरल, जातीय व्यायाम लुप्त होते जाते हैं। पाश्चात्य शिक्षा से होनहार भ्रान्त युवकों के अन्याय ऊधम के कारण सभी प्रकार के "अखाड़े" आदि व्यायाम को, अश्लीलता सम्बन्ध की दृष्टि से देखी जाती है। इन सबके स्थान में आजकल कहीं क्रिकेट फुटबाल हाकी टेनिस आदि का प्रचार हो चला है। ये अच्छे होने पर भी सब के लिये सुलभसाध्य नहीं हैं। क्रिकेट से न केवल शरीर का उत्कर्ष साधन होता है प्रत्युत इससे मानसिक तथा नैतिक उन्नति भी होती है। क्योंकि खेल की हार जीत किसी एक व्यक्ति के ऊपर निर्भर नहीं। इङ्गलैण्ड में (जहाँ की क्रिकेट एक जातीय खेल है) एक प्रवाद है कि वाटरलू का युद्ध क्रिकेट मैदानों में जय किया गया था। फुटबाल, हाकी आदि खेल भी इसी प्रकार के हैं। इन खेलों में चतुरता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, स्थिरता तथा चित्त की एकाग्रता और भिन्न ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का समय और बहुधा नैतिक सद्गुण भी खेल-व्यायाम से लब्ध होते हैं।

अब हम प्रधान २ क्रीड़ाओं को संक्षेप से वर्णन करेंगे। मृगया (शिकार) यह मनुष्य जाति का आदि व्यवसाय होने के कारण अत्यन्त चित्ताकर्षक क्रीड़ा है। इसके गुणों के विषय में महाकवि कालिदास भी सहमत हैं। परन्तु यह क्रीड़ा क्रूर है और जन साधारण के हाथ से भी बाहर है।

घुड़दौड़ (अश्वारोहण) भी इसी तरह एक अत्यन्त आमोद-जनक व्यायाम है। परन्तु सब के अधिकार में नहीं।

नाव चलाना तथा तैरना भी जल प्रधान देशों में उपकारी और अनायासलभ्य व्यायाम है। इससे कभी २ मनुष्यों की जीवनरक्षा भी की जा सकती है। मुग्दर बैठक, आदि देशीय तथा डम्बल आदि विदेशीय व्यायाम शरीर का शीघ्र उत्कर्ष साधन करने पर भी प्रायः अकेले के कारण कष्ट साध्य हैं और केवल जीविकार्थी (पेशेदार) मल्लों के लिए उपयोगी हैं।

व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए। अतएव दण्ड, मुग्दर, डम्बल आदि से (जो प्रायः घरों में किये जाते हैं) क्रिकेट, फुटबाल, कुश्ती, कबड्डी आदि अत्युत्तम हैं। कारण न केवल इनके लिये मुक्त स्थान होना आवश्यक है प्रत्युत एकाधिक मनुष्यों के सम्मेलन होने के कारण ये सुखसाध्य भी होते हैं।

साधारण मनुष्यों के लिये वायुसेवन भी अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु यहाँ भ्रमण के साधन में ५ मिनट की दौड़ या १०, १५ मिनट की शीघ्र गति अधिक उपयोगी होती है।

करनी पड़ती। विशेषतः उच्च श्रेणी के मनुष्य केवल मस्तिष्क चालना द्वारा ही अपना जीवन पालन करते हैं। किन्तु कायिक और मानसिक यन्त्रों में सामञ्जस्य रखने के लिए उच्च श्रेणी के मनुष्यों को ही व्यायाम की अधिक आवश्यकता है।

पूर्व काल में हमारे देश में दंड, मुग्दर, बैठक, कुश्ती पटा आदि व्यायाम सभी श्रेणियों में न्यूनाधिक व्यवहृत किये जाते थे, किन्तु आजकल ये निर्दोष और सरल जातीय व्यायाम लुप्त हो से जाते हैं। आत्मदर्प में दो चार भ्रान्त युवकों के अन्याय उद्यम के कारण, सभी प्रकार के "अखाड़े" आदि व्यायाम की, मण्डलियां सन्देह की दृष्टि से देखी जाती हैं। इन सस्ते खेलों के स्थान में आजकल कहीं क्रिकेट फुटबाल, हाकी, टेनिस, आदि की अधिक चर्चा है। ये अच्छे होने पर भी सब के लिये सुगसाध्य नहीं हैं। क्रिकेट से न केवल शरीर का उत्कर्ष साधन होता है प्रत्युत इससे मानसिक तथा नैतिक उन्नति भी होती है। क्योंकि खेल की हार जीत किसी एक व्यक्ति के ऊपर निर्भर नहीं। इङ्गलैण्ड में (जहां का क्रिकेट एक जातीय खेल है) एक प्रवाद है कि वाटरलू का युद्ध क्रिकेट प्राङ्गणों में जय किया गया था। फुटबाल, हाकी आदि खेल भी इसी प्रकार के हैं। इन खेलों में सतर्कता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, क्षिप्रता तथा चित्त की एकाग्रता और भिन्न ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का समय और बहुधा नैतिक सद्गुण भी क्रीड़ा-व्याज से लब्ध होते हैं।

अब हम प्रधान २ क्रीड़ाओं को संक्षेप से वर्णन करेंगे। मृगया (शिकार) यह मनुष्य जाति का आदि व्यवसाय होने के कारण अत्यन्त चित्ताकर्षक क्रीड़ा है। इसके गुणों के विषय में महाकवि कालिदास भी सहमत हैं। परन्तु यह क्रीड़ा क्रूर है और जन साधारण के हाथ से भी बाहर है।

घुड़दौड़ (अश्वारोहण) भी इसी तरह एक अत्यन्त आमोद-जनक व्यायाम है। परन्तु सब के अधिकार में नहीं।

नाव चलाना तथा तैरना भी जल प्रधान देशों में उपकारी और अनायासलभ्य व्यायाम है। इससे कभी २ मनुष्यों की जीवनरक्षा भी की जा सकती है। मुग्दर बैठक, आदि देशीय तथा डम्बल आदि विदेशीय व्यायाम शरीर का शीघ्र उत्कर्ष साधन करने पर भी प्रायः अकेले के कारण कष्ट साध्य हैं और केवल जीविकार्थी (पेशेदार) मल्लों के लिए उपयोगी हैं।

व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए। अतएव दण्ड, मुग्दर, डम्बल आदि से (जो प्रायः घरों में किये जाते हैं) क्रिकेट, फुटबाल, कुश्ती, कबड्डी आदि अत्युत्तम हैं। कारण न केवल इनके लिये मुक्त स्थान होना आवश्यक है प्रत्युत एकाधिक मनुष्यों के सम्मेलन होने के कारण ये सुखसाध्य भी होते हैं।

साधारण मनुष्यों के लिये वायुसेवन भी अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु घंटों भ्रमण के साधन में ५ मिनट की दौड़ या १०, १५ मिनट की शीघ्र गति अधिक उपयोगी होती है।

जीवन न केवल देश, काल, पात्र, प्रत्युत बहुधा खाद्य, पानी, वायु, आवास गृह, और परिच्छद आदि पर भी निर्भर करना है। यह भी देखने में आया है कि बलिष्ठ पुरुष निर्बल से अधिक सदाचारी होता है। प्राचीनों ने भी कहा है कि "क्षीणा जनानिष्करुणा भवन्ति" अर्थात् दुर्बल निर्दय होते हैं। अतः हम युवकों को और विद्यार्थियों को व्यायाम के लिये विशेष अनुरोध करते हैं।

"विद्यार्थी" से

प्रश्न

[१] व्यायाम की आवश्यकता बताओ।

[२] देशी व्यायाम कौन कौन से हैं ?

[३] आजकल के खेल कौन सस्ते और निर्दोष हैं ?

[४] घुड़ दौड़, नाव चलाना, मुदगर, बैठक आदि क्रीड़ाओं के लाभ क्या क्या हैं ?

[५] स्त्रियों के लिये व्यायाम उपयोगी है। ऐसा सिद्ध करो।

७--सूर्य्यग्रहण पर अन्योक्ति

[१]

रे रजनीश निरङ्कुश तूने,
दिननायक का ग्रास किया।
नेक न धूप रही धरणी पै,
घोर तिमिर ने वास किया॥

से हवा में से ऑक्सिजन (प्राणवायु) रक्त से मिलकर शरीर की सब प्रकार की क्रियाओं को तीक्ष्ण करता है। और उसी परिमाण से कार्बोलीक ऐसिड गैस (अंगारक वायु) निकल कर शरीरस्थ धातुओं की शुद्धि होती है। हमारे देश का प्राणायाम एक प्रकार का फुरफुस का व्यायाम है। यह साधारण मनुष्यों के लिये उपयोगी नहीं।

(ग) त्वचा—व्यायाम से शोणित बाह्य त्वचा पर सञ्चालन करने से स्वेद ग्रन्थियों द्वारा बहुधा हो जाता है, जिससे सब शरीर न्यूनाधिक शुद्ध हो जाता है व्यायाम के अनन्तर शरीर पर शोषक तथा गर्म कपड़ा पहरना चाहिये जिससे देह शीघ्रतया ही शीतल होकर व्याधिग्रस्त न हो।

(घ) अन्त्रादि—व्यायाम द्वारा शरीर के अन्यान्य यन्त्र में विशेषतः अन्त्रादि में चेष्टा होने के कारण कोष्ठबद्धता आदि दूर होती हैं। इससे भी शरीर का बहुत सा मल दूर होता है। अजीर्ण क्षुधामान्द्यादि रोग बिना दवा के दूर हो जाते

(ङ) उपर्युक्त भिन्न कारणों से नाड़ी मण्डली की सम्य स्फूर्ति होने से हमारे आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक जीव में भी उन्नति होगी।

बहुधा मनुष्यों की ऐसी भ्रान्त धारणा है कि भौति घटनाओं का शीलता से कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु वै निक परीक्षाओं से प्रमाणित हुआ है कि हमारा नैति

जीवन न केवल देश, काल, पात्र, प्रत्युत बहुधा खाद्य, पानी, वायु, आयास गृह, और परिच्छद आदि पर भी निर्भर करता है। यह भी देखने में आया है कि बलिष्ठ पुरुष निर्बल से अधिक सदाचारी होता है। प्राचीनों ने भी कहा है कि "क्षीणा जनानिष्करुणा भवन्ति" अर्थात् दुर्बल निर्दय होते हैं। अतः हम युवकों को और विद्यार्थियों को व्यायाम के लिये विशेष अनुरोध करते हैं।

"विद्यार्थी" से

प्रश्न

[१] व्यायाम की आवश्यकता बताओ।
[२] देशी व्यायाम कौन कौन से हैं ?
[३] आजकल के खेल कौन सस्ते और निर्दोष हैं ?
[४] घुड़ दौड़, नाव चलाना, घुड़सवार, बैठक आदि क्रीड़ाओं के लाभ क्या क्या हैं ?
[५] स्त्रियों के लिये व्यायाम उपयोगी है। ऐसा सिद्ध करो।

८--सूर्य्यग्रहण पर अन्योक्ति

[१]

रे रजनीश निरङ्कुश तूने,
दिननायक का ग्रास किया।
नेक न धूप रही धरणी पै,
घोर तिमिर ने वास किया॥

से हवा में से ऑक्सिजन (प्राणवायु) रक्त से मिलकर शरीर की सब प्रकार की क्रियाओं को तीक्ष्ण करता है। और उसी परिमाण से कार्बोलिक ऐसिड गैस (अंगारक वायु) निकल कर शरीरस्थ धातुओं की शुद्धि होती है। हमारे देश का प्राणायाम एक प्रकार का फुफ्फुस का व्यायाम है। परन्तु वह साधारण मनुष्यों के लिये उपयोगी नहीं।

(ग) त्वचा—व्यायाम से शोणित बाह्य त्वचा पर अधिक सञ्चालन करने से स्वेद ग्रन्थियों द्वारा बहुधा ... हो जाता है, जिससे सब शरीर न्यूनाधिक शुद्ध हो जाता है। व्यायाम के अनन्तर शरीर पर शोषक तथा गर्म कपड़ा ... चाहिये जिससे देह शीघ्रतया ही शीतल होकर ... न हो।

(घ) अन्त्रादि—व्यायाम द्वारा शरीर के अन्यान्य यन्त्रों में विशेषतः अन्त्रादि में चेष्टा होने के कारण कोष्ठबद्धता आदि दूर होती हैं। इससे भी शरीर का बहुत सा मल दूर होता है। अजीर्ण क्षुधामान्द्यादि रोग बिना दवा के दूर हो जाते हैं।

(ङ) उपर्युक्त भिन्न कारणों से नाड़ी मण्डलों को सम्यक् स्फूर्ति होने से हमारे आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक ओर में भी उन्नति होगी।

बहुधा मनुष्यों की ऐसी भ्रान्त धारणा है कि भौतिक घटनाओं का शोरता से कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु वैज्ञानिक परीक्षाओं से प्रमाणित हुआ है कि हमारा ...

सौघन न केवल देश, काल, पात्र, प्रत्युत बहुधा खाद्य, पानी, वायु, आयास गृह, और परिच्छद आदि पर भी निर्भर करता है। यह भी देखने में आया है कि बलिष्ठ पुरुष निर्बल से अधिकसदाचारी होता है। प्राचीनों ने भी कहा है कि "क्षीणा जनानिष्करुणा भवन्ति" अर्थात् दुर्बल निर्दय होते हैं। अतः हम युवकों को और विद्यार्थियों को व्यायाम के लिये विशेष अनुरोध करते हैं।

"विद्यार्थी" से

प्रश्न

[१] व्यायाम की आवश्यकता बताओ।

[२] देशी व्यायाम कौन कौन से हैं ?

[३] आजकल के खेल कौन सस्ते और निर्दोष हैं ?

[४] घुड़ दौड़, नाव चलाना, मुद्गर, बैठक आदि क्रीड़ाओं के लाभ बता क्या है ?

[५] स्त्रियों के लिये व्यायाम उपयोगी है। ऐसा सिद्ध करो।

७--सूर्यग्रहण पर अन्योक्ति

[१]

रे रजनीश निरङ्कुश तूने,
दिननायक का ग्रास किया।
नेक न धूप रही धरणी पै,
घोर तिमिर ने वास किया ॥

[२]

जिसको पाय चमकता था तू,
अधम उसी को रोक रहा ।
धिक पापिष्ठ, कृतघ्न, कलङ्की,
तेज त्याग तम प्राप्त किया ॥

[३]

मन्द हुआ सुन्दर मुख तेरा
छिटकी छवि तारागण की ।
अपने आप ग्लानि में अपना,
क्यों इतना उपहास किया ॥

[४]

जुगनू आग उड़े जङ्गल में
दिये नगर में जलवाये ।
मूँद मरा महिमा महान की,
अणु का तुच्छ विकास किया ॥

[५]

मङ्गल मान निशाचर सारे,
चरते और विचरते हैं ।
दिन को कर-दिया रजनी का,
देव समाज उदास किया ॥

[६]

उष्ण प्रभा दिन वनपुष्पों से,
सार सुगन्ध न कढ़ते हैं।
रोक चाल नैसर्गिक विधि की,
दिव्य हवन का ह्रास किया॥

[७]

चकित चकोर चाह के चेरे,
चिनगी चुगते फिरते हैं।
मुग्ध, पग, पङ्ख जलाने वाला,
ज्वलित चन्द्रिकाभास किया॥

[८]

श्वान, शृगाल, उलूक पुकारे,
सकुचे कञ्ज, कुमोद खिले।
जोड़ तोड़ चकई चकवों के,
खण्डित प्रेम विलास किया॥

[९]

दिन में चुगने वाली चिड़ियाँ,
हा! अब कहीं न उड़ती हैं,
सब के उद्यम हरने वाला,
प्रकट मानसिक त्रास किया॥

[१०]

नाम सुधाकर है पर तूने,
विष बरसाना सीखा है।
विरहानल को भड़काने का,
अति उत्तम अभ्यास किया॥

[११]

बढ़ बढ़ कर पूरा होता है,
घटता घटता छुपता है।
यों उन्नति अवनति के द्वारा,
पक्षभेद प्रति मास किया॥

[१२]

छुटने लगी छूत अब तेरी,
उगमी,फोर प्रभाकर की।
फिर दिन का दिन हो जायेगा,
अब क्यों वृथा प्रयास किया॥

[१३]

दिव्य उजाला देकर तुमको,
परसों फिर चमकायेगा—

कह दे यह सविता स्वामी ने,
मोहित अपना दास किया ॥

—नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ।

प्रश्न

[१] रजनीश, दिननायक, तिमिर, प्रभु, सुधाकर के अर्थ लिखो ।
[२] दूसरे पद्य का अर्थ लिखो ।
[३] "सुंदर महामहिमा महान की प्रभु का पुष्प विकास किया" इसका अर्थ बताओ ।
[४] सातवें पद्य में कौनसा अनुप्रास है ? अनुप्रास किसे कहते हैं ?
[५] प्रभाकर किसे कहते हैं ?

८—ग्रामवास और नगरवास ।

लोग समझते हैं कि बड़े यशस्वी, बड़े पुरुषार्थी और बड़े विद्वान् को उत्पन्न करना नगर ही का काम है । ग्रामवासी कहां तक बड़े हो सकेंगे क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि "गँवई के गँवार ।" वे लोग यह समझते हैं कि गँवई में सदा भैंस, बैल और भेड़ों का साथ रहता है और हल मूसल कोठारी ऊखल आदि के अतिरिक्त कुछ देखने को नहीं रहता तो ऐसे संघट्ट में रहने वाला क्या उन्नति की योग्यता रख सकता है । यह योग्यता नगर निवासी ही में आसकती है जहां सब प्रकार के पदार्थों के देखने का अवसर रहता है । परन्तु यह उलटी बात

है [illegible] होती है कि मनुष्यों को मनुष्यता [illegible] कलकत्ता बम्बई आदि बड़े बड़े नग [illegible] का ऐसा चक्कर रहता है कि [illegible] अवसर नहीं मिलता है कि [illegible] अपने में [illegible] ग्रामभ्रमण सैकड़ों कार्य [illegible] करते हैं, नाना प्रकार के सुख [illegible] रहते हैं, शिक्षा की [illegible] रहता है और इन घटनाओं में [illegible] और [illegible] अन्त आत्मग्रीन हो वैसा [illegible] कि [illegible] तुलभता या [illegible] उनको दिमागों [illegible] हुआ [illegible] और [illegible] प्रकाश की चमक [illegible] मस्तिष्क में [illegible] यदि दुकानें का [illegible] की [illegible] पवित्र हुआ [illegible] करते रहें, फिर एक [illegible] बोझ [illegible] और [illegible] फिर जैन [illegible] पड़े तो [illegible] झाड़ते हुवे [illegible] और ऐसी [illegible]

करते शुक पिक मयूरों की कुहुकों की मधुरता छाई रहती है। वे घर बैठे ही पुष्पों की परागों से पीत, मकरन्द कणों से मन्द मन्द चलती हवा का आनन्द उठाते हैं, वे स्वभाव सिद्ध ही वनस्पतियों का सुगन्ध से सुगन्धित रहते हैं। वे जिधर ही दृष्टि डालें उधर ही कहीं पक्के आमों के बोझों से झुकी हुई डाल देख पड़ेगी और कहीं जामुन चुआते वृक्ष देख पड़ेंगे। जहां कहीं तक दृष्टि जाय वहां तक धानों से तरङ्गित खेत और कहीं खिले कमलों से व्याप्त सरोवर देख पड़ेंगे। धारोष्ण दुग्ध, उसी क्षण का मह के निकाला मक्खन, तथा टटके फल और शाक का स्वाभाविक भोजन है। शारीरिक परिश्रम उनका नित्य कर्म है, कृषिकर्म और आकाश की वृष्टि के फल देखते देखते उद्योग और दैव का माहात्म्य उन्हें सीखना नहीं पड़ता। उनके शरीर में सुकुमारता का रोग नहीं रहता कि बिना गुल गुले गद्दी तकियों के सो ही न सकें और घाम में निकलें तो शिरः पीड़ा और बरसात में भीगें तो सन्धि पीड़ा हो। उनका दीपन प्रबल रहता है, हड्डों में शक्ति रहती है अतएव वे चिर-जीवी होते हैं। और इन्हीं कारणों से उदार चरित और महापुरुष होने के योग्य उनका मस्तिष्क रहता है। अतएव नागरिक बड़ी शिक्षा पर भी उतना बड़ा पुरुष नहीं होता जितना दिहाती पुरुष थोड़े समय शिक्षा पाने से ही हो सकता है। हां यह दूसरी बात है कि अन्यान्य घटनाओं के विषय में नागरिक की बहुज्ञता रहती है दिहाती की नहीं पर

साथ ही साथ यह भी है कि नगरों में जैसे लौकिक चतुरता सम्पादक, कहीं धूम धाम के व्यापार वाले गुदाम और बाज़ार रहते हैं, कहीं बड़ी नाट्यशाला में नाटकाभिनय होते हैं, कहीं घुड़दौड़ और मेले होते हैं, कहीं इन्द्रजाल खेल सङ्गीत और नृत्य होते हैं। वैसे ही मद्यशाला द्यूतशाला आदि, तथा नित्य कहीं चोरी मारपीट के हल्ले, कहीं ठग और धूर्तों के बखेड़े आदि ऐसी घटनायें भी होती हैं जो वृत्तियों को बिगाड़ें और धूर्तता के अङ्कुर जमावें। लोग सीधे साधे दिहातों को दिहाती कहके दुरदुरा देते हैं। पर जैसे दिहातों पर से यह झलकता है कि लौकिक विषय में चतुर नहीं वैसे ही यह भी झलकता है कि सूधा सादा निष्कपट और सज्जन और जहां किसी को कहा कि ये तो नगरनिवासी न हैं॥ बस उसी समय विदित हुआ कि ये लोग चतुर तथा छल कपट और धूर्तता के शास्त्र में भी प्रवीण हैं। और सच्ची दृष्टि से चतुरता की तुलना करें तो यह भी निर्णय करना कठिन है कि अधिक चतुर कौन!! क्योंकि जिस विषय का सङ्घट नगर निवासी को रहता है उस विषय में वह चतुर रहता है और जिस बात में दिहाती रहता है उसमें वह भी किसी से कम नहीं रहता है। नागरिक लोग वनस्पतियों को नहीं चीन्हते, कृषि-विद्या कुछ भी नहीं जानते केवल शब्द के सुनने से पशु पक्षियों को नहीं पहिचान सकते, पशु पक्षियों के स्वभाव के परिचयी नहीं रहते, परन्तु इन विषयों में वे ही सीधे साधे ग्राम-

जाता है। ये महात्मा भी निरहुत के ग्रामयादिकाओं के रहने वाले थे।

महाराज रणजीतसिंह पंजाब के अन्तिम वीर पुरुष हो गए हैं। उनका प्रताप-सूर्य्य ऐसा प्रचण्ड उदित हुआ था कि यदि दैव प्रतिकूल नहीं होते तो एक दिन सारा भारत पञ्जाब के आधीन होता और लाहौर समस्त भारत की राजधानी कहलाती। पंजाब में अभी तक हजारों, पुल, सड़कें, मन्दिर और लाखों बिघहे ब्रह्मोत्तर भूमि तथा अनेक नहरें इन्हीं महाराजाधिराज की महिमा से सचित हैं। लाहौर के अद्भुत शालामार बाग में जाने से आज भी विदित होता है कि पंजाब केशरी महाराजा रणजीतसिंह इसमें कहीं टहलते होंगे। ये वीरवर महाराजाधिराज भी पंजाब के गुजरांवाला प्रान्त के एक छोटे से शकरचक् ग्राम के रहने वाले थे।

बंगभाषा के जीवन-धन जगत्प्रसिद्ध ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महामहोदय भी गत शताब्दी में एक भारत के रत्न स्वरूप हो गए हैं। इन्होंने यद्यपि एक साधारण ब्राह्मण के घर में जन्मग्रहण किया था तथापि सारे बंगाल को बंगला सिखाने

ने पुत्र को गले लगा हर्ष से आज्ञा दी और रघुनन्दन ने वह दानपत्र गुरु को अर्पित कर कहा कि 'तब मुझे राज न था पर अब मिला है सो गुरुदक्षिणा में देता हूं, लीजिये। महेश बड़े लज्जित हुए। महेश ठाकुर ने कितना ही अस्वीकार किया पर रघुनन्दन न माना। अन्त में महेश ठाकुर ने स्वीकार किया। तब से आज तक उसी महामान्य वंश में यह चला आता है।

इसकी राजधानी दरभङ्गा है।

[illegible] । इस समय जितने बंगला और [illegible] प्राय. सभीने ईश्वरचन्द्र विद्या[illegible] । इसलिये यदि इनको बङ्ग भाषा के [illegible], यावद बङ्ग मण्डली के गुरु कहें [illegible] दर सुना इनकी जगत्प्रसिद्ध है। इनका [illegible] । इसे प्रसिद्ध महानुभाव पण्डित [illegible] मेदनीपुर ज़िले के बीरसिंह [illegible]

[illegible] भूषणस्वरूप बङ्किम बाबू के [illegible] अद्भुत माधुरी की वृष्टि [illegible] परमाचार्य बाबू बङ्किमचन्द्र [illegible] वाले थे।

[illegible] तक एक से एक उत्तम [illegible] जायगा परन्तु सज्जन का [illegible] गुण दोषों का ग्रहण करें। [illegible]

[illegible] वायु इत्यादि ग्राम का सर्व [illegible] करने से होता है। इसमें [illegible] नगर ही में अधिक [illegible] है। ग्राम में थोड़ी बहुत [illegible] में तो ग्राम परम [illegible] है और नगर आरोग्य-

रहित किन्तु शिक्षित जीवन बनाता है । अलग अलग दोनों ही काम के नहीं परन्तु यदि दोनों का मिश्रण हो तभी मधुसंकल होता है । प्रायः जितने उदाहरण दिये जा सकते हैं, वे सब ऐसे ही हैं कि ग्राम ने उन लोगों को आरोग्य दिया, मस्तिष्क में बल दिया और हृदय में धैर्यगाम्भीर्य आदि गुण दिये और ऐसे पात्र को पाकर नगर ने शिक्षा दी । तब वे इतने बड़े पुरुष हो इस भूमि के अलंकार हो विचरण करने लगे । इस समय भी विद्या की राजधानी काशी है । और यहाँ के परम मान्य विद्वान् तपस्वी महानुभाव पण्डित श्रीदामोदरजी महाराज थे* जो काशी में व्याकरण को राज्याभिषेक देनेवाले पूज्यपाद पण्डित काशीनाथ जी के शिष्य थे, जिन्हें गवर्नमेण्ट कालिज ने स्वयं कई बेर आवाहन किया पर न गए और केवल भजन कर अपना शेष जीवन व्यतीत किया, वे भी ग्रामवासी ही थे ।

ज्योतिष शास्त्र के अद्वितीय सिद्धान्तवेत्ता परमगणित-पटु महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी काशी के मनोहर खजुरी ग्राम के निवासी थे । गवर्नमेण्ट कालिज के पूज्य, लोकपूर्वादि नाना भाषा ग्रन्थों के रचयिता धर्मानन्द-दास के प्रधान अध्यापक पण्डित [illegible] शास्त्री जी

---

* १८९९ ई० में इन महात्मा का स्वर्गारोहण हुआ ।

महामहोपाध्याय जी भी अलवर राज्य के दोमौत ग्राम के थे। जगद्विदित महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमार शास्त्री जी भी ग्राम ही के निवासी थे। जगन्मान्य दिगम्बर स्वामी भास्करानन्द सरस्वती भी कानपुर के समीपस्थ मैथेलाल ग्राम के थे परन्तु क्या यह लोग ग्राम ही में पड़े रहते तो ऐसे महानुभाव होते कदापि नहीं। ग्राम ने योग्यता का बीज भले ही दिया हो परन्तु विकसित कर इतना बड़ा बना देने वाली भगवती काशी ही है। एक बात और भी है। भारतवर्ष में इस समय लगभग तीस करोड़ मनुष्यों की गणना हुई है। इसमें सब नगर निवासी जोड़े जांय तो कदाचित् एक करोड़ भी न ठहरेंगे। अस्तु एक कोटि मान लिये जायें तब यदि अच्छे अच्छे पुरुषों के उदाहरण लिये जायें तो उनमें तैंतीस प्रतिशत भी नगरनिवासी का अच्छा उदाहरण मिले, तहाँ तक तो नगरनिवासी ग्रामवासी के बराबर होकर उदारपक्ष समझा जायगा पर यों हम गिनने में नगरनिवासी अन्ततः जीतेगा। नगर में चार उदाहरण से अधिक होते हैं। यह भी एक नगर के लिये बड़ा कलङ्क है। पर ध्यान देके देखें तो ग्राम में भी ये बात कम नहीं है। ग्रामों में बराबर सेंध पड़ा ही करती है। खलिहानों से हजारों मन अन्न अचानक चोरी में जाता है। खेतों के सिवाने, तोड़ताड़ कर घटा बढ़ा के बांधने वाले सहस्रों हैं। पानी की चोरी नगर में कभी न सुनी होगी पर बांध

इतना ही उपदेश कर समाप्त करते हैं कि ग्राम और नगर-निवास में जो जो अच्छी बातें हैं उनका ग्रहण करना और बुरी का त्याग करना।

'याते कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥'

—पं० अम्बिकादत्त व्यास

प्रश्न

[१] ग्रामनिवास और नगरनिवास के लाभ बताओ।

[२] ग्रामवासियों में क्या क्या अच्छी बातें हैं ?

[३] नगर में रहने के लाभ वर्णन करो।

[४] कुछ प्रसिद्ध पुरुषों के नाम बताओ जो ग्रामवासी थे।

[५] विद्यापति ठाकुर, महाकवि चन्द, रणजीतसिंह, और टोडरमल इनकी जन्मभूमि बतलाओ।

[६] ग्रामवास और नगरवास का वर्णन संक्षेप में लिखो।

९—रहीम की कविता।

अब रहीम चुप करि रहौ, समुझि दिनन को फेरि।
जब दिन नीके आइ हैं, बनत न लगिहैं देर॥
दुर्दिन परे रहीम प्रभु, सबै लेय पहिचान।
सोच नहीं धन हानि को, होत बड़ो हित हान॥

सोरठा

रहिमन पुतरी, स्याम, मनहु जलज मधुकर लसे।
मानहुं सालिगराम, रूपे के अरघा धरे॥

[illegible] के, नाहिं गर्व को लेस ।
[illegible] को नऊ कहावत सेस ॥
[illegible], लगत कलंक न काहि ।
[illegible], सब समुझहिं सबनाहि ॥
[illegible] जिनकी छाँह गँभीर ।
[illegible] सेहुड करंज करीर ॥
[illegible] नहीं, लाख करो किन कोय ।
[illegible] दूध को मथे न माखन होय ॥
[illegible] रहे दही मही बिलगाय ।
[illegible] और परे ठहराय ॥
[illegible], फल रहीम अति दूर ।
[illegible] जैसे नार खजूर ॥
[illegible] मनही राखो गोय ।
[illegible], बाँटि न लैहैं कोय ॥
[illegible], भवसागर की नाव ।
[illegible] और न कछुक उपाव ॥
[illegible], जे कहुँ माँगन जाहिं ।
[illegible] जिन मुख निकसत नाहिं ॥
[illegible], [illegible] मीनन को मोह ।
[illegible] नऊ न छाडनि छोह ॥
[illegible] सुजन से रहत लगाये चित्त ।
[illegible] गाढ़े दिन को मित्त ॥

कवित्त

दीबो चहै करतार जिन्हैं, सुख कौन रहीम सकै तिन्ह टारै ।
उद्यम कोऊ करौ न करौ, धन आवत है चलो तिनहि के द्वारे ॥
देव हँसे सब आपुस में, विधि के परपंच न जाहि विचारे ।
बालक आनक दुंदुभी के भयो, दुंदुभी बाजत आन के द्वारे ॥

प्रश्न

परपंच का शुद्ध रूप क्या है ? रहीम का जीवन चरित्र लिखो। [illegible] श्री और भिखारी का [illegible] में हाल लिखो।

१०-मौसी

(डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'मासी', का छायानुसार।)

(१)

"मौसी!"

'सो जाओ, अब देरी हो रही है, सोने की कोशिश करो।'

'देरी होती है तो होने दो। मेरे अब बहुत दिन नहीं रह गये हैं। मैं कह रहा था कि मणि अपने पिता के घर चली जाय। वे कहाँ हैं सो मुझे याद नहीं।'

'वे सीतारामपुर में हैं।'

'हाँ हाँ। सीतारामपुर। मणि वहीं भेज दो। इस रोगी आदमी के पास रहना ठीक नहीं है। वह खुद भी बहुत कमजोर रहती है।'

मैंग्सी फिर भी आशा करने लगी कि ओतीन सो गया पर एकाएक वह बोल उठा—'मैं जानता हूँ कि तुम सोचती थीं कि मैं मनि के संग सुखी नहीं हूँ और इस लिये उससे क्रुद्ध थी। किन्तु मैंग्सी! सुख, आनन्द, मोद इन तारों के समान हैं। तारे समस्त नभ को आच्छादित नहीं करते, बीच बीच में अन्धकार के अवकाश हैं। जीवन में हम भूल भी करते हैं और हमें भ्रम भी होता है किन्तु तौभी बीच बीच में अवकाश रहते हैं जिनमें से सत्य की ज्योति का प्रकाश होता है। मैं नहीं जानता आज रात को मेरे हृदय को प्रसन्न करनेवाला सुख कहाँ से आ रहा है।'

मैंग्सी धीरे धीरे ओतीन के सर पर हाथ फेरने लगी। अँधियारे में उसके आंसू देख नहीं पड़ते थे।

'मैंग्सी, मैं सोच रहा था कि मनि इतनी अल्पवयस्का है कि वह कैसे अपना समय बितायेगी। जब मैं......'

'मनि अल्पवयस्का! वह तो मुझसे बड़ी है ' मैं भी तो लड़की हो थी जब अपने हृदय की मूर्ति को थी मुखी, किन्तु फिर भी सदा के लिये उसको हृदय में पाती हूँ। क्या तुम सोचते हो कि उसमें कुछ हानि थी! और फिर, क्या सुख कुछ बहुत ही आवश्यक वस्तु है!'

'मैंग्सी, मालूम होता है कि हमारे सन्तप्त अब अन्तिम दूर उड़ने लगा है, मुझको......'

इसके लिये चिन्ता मत करो! क्या यहाँ बहुत बड़े हैं

[illegible]

पंक्तियाँ लिखकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर दी है। आपने लिखा है—"जो कुछ इसके (अहिल्याबाई के) विषय में लिखा मिलता है, उसमें इतना तो प्रमाणित हो है कि उसकी सत्यता और यथार्थता में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं दिखलाई देता।" हमें मेलकम साहब के इन वाक्यों ही से परम सन्तोष है।

—आदर्श महिलायें

प्रश्न

(१) अहिल्याबाई का जीवन-वृत्तान्त संक्षेप में लिखो।
(२) अहिल्याबाई कहां की रहने वाली थी।
(३) अहिल्याबाई ने कितने दिन तक राज्य किया ?
(४) इसके राज्य-शासन में कौन सी विशेष बातें थीं ?

१५—अङ्गद और रावण का संवाद

(१)

कह दशकन्ध कौन तैं बन्दर,
मैं रघुवीर दूत दशकन्धर।
मम जनकहि तोहिं रही मिताई,
तव-हित कारण आयहुं भाई॥
उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती,
शिव, विरञ्चि पूजेहु बहु भाँती।

वर पायहु कीन्हेउ सब काजा,
जीतेहु लोकपाल सुरराजा ॥
नृप अभिमान, मोह-वश कीन्हा,
हरि आनेहु सीता जगदम्बा ।
अब शुभ कहा करहु तुम मोरा,
सब अपराध छमहिं प्रभु तोरा ॥
दशन गहहु तृण कण्ठ कुठारी,
पुरजन संग सहित निज नारी ।
सादर जनक-सुता करि आगे,
इहि विधि चलहु सकल भय त्यागे ॥
प्रनतपाल रघुवंश-मणि त्राहि त्राहि अब मोहि ।
सुनतहिं आरत-वचन प्रभु, अभय करेंगे तोहिं ॥
रे कपि पोत ! बोल संभारी,
मूढ़ न जानेसि मोहि सुरारी ।
कहु निज नाम जनक कर भाई,
केहि नाते मानिये मिताई ॥
अंगद नाम बालि कर बेटा,
तासों कबहुं भई ही भेंटा ।
अंगद वचन सुनत सकुचाना,
रहा बालि बानर मैं जाना ॥
अंगद तुही बालि कर बालक,
उपजेहु वंश-अनल कुल घालक ।

कहलाते हैं। कहते हैं इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों की तीस पीढ़ियों ने राज्य किया। इनके बाद अनेक अन्य राजाओं ने [illegible] राज्य किया। यहाँ के हिन्दूराजा का नाम [illegible] हुआ। इसने [illegible] का प्रसिद्ध कुतुब मीनार के [illegible] बनवाया। इसका नाम इन्द्रपुर पड़ा और [illegible] होते होते दिल्ली हो गया। [illegible] वालों ने इसका नाम देहली रख [illegible] ने दिल्ली में [illegible] तक राज्य किया [illegible] अन्त में [illegible] लड़ते हुए वह मारा गया। उसके [illegible] ३६२ वर्ष तक दिल्ली उजाड़ पड़ी रही। इसके बाद तोमर वंशीय राजा अनङ्गपाल ने दिल्लीपुर में अपनी राजधानी बनाई। अनङ्गपाल के वंशधरों ने २०४ वर्ष तक दिल्ली में राज्य किया। फिर न जाने क्यों उन लोगों ने अपनी राजधानी दिल्ली से हटा कर, कन्नौज में जमाई। तोमर वंश के सोलहवें राजा अनङ्गपाल को राठौर राजपूतों ने बुरी तरह हराया [illegible] वह कन्नौज से भाग कर दिल्ली गया और उसे फिर [illegible] राजधानी बनाया। अनङ्गपाल ही ने कुतुबमीनार के पास सन् १०६० ई० में एक क़िला बनवाया, जिसका नाम लालकोट रखा। कहा जाता है चौहान वंशीय विशालदेव नाम के राजा ने सन् ११५१ ई० में दिल्ली पर अपना आधिपत्य जमाया और अनङ्गपाल के लालकोट नामक क़िले को बढ़वा कर, एक बड़ा क़िला तैयार करवाया।

[illegible] है। लाट का दर्वाज़ा उत्तर* की ओर है और सब से नीचे के खण्ड में पूजा करने के कई एक घण्टे पत्थर में खुदे हुए हैं। इन घण्टों को देखकर बहुत से लोग अनुमान करते हैं कि इस लाट को किसी हिन्दू नरेश ने बनवाया है। कुछ लोग तो इस लाट का बनवाने वाला पृथ्वीराज को बतलाते हैं और कहते हैं कि उसका विचार इस लाट को बहुत ऊँची बनवाने का था—किन्तु मुसल्मानों की चढ़ाई के कारण वह अपना विचार पूरा न कर पाया। कुतुबुद्दीन ने इस लाट को [illegible] और उस पर अपने मालिक शाहबुद्दीनगोरी की [illegible] में उसका नाम खुदवा दिया। इस लाट पर बहुत से मुसल्मानों [illegible] अरबी अक्षरों में लिखे [illegible] अनेक लोगों के नाम भी खुदे हुए हैं इस [illegible] में [illegible] सीढ़ियां हैं। लाट का आकार ४७ फीट [illegible] ऊपर की चौड़ाई ६ फीट है। जैसे जैसे लाट [illegible] गया है वैसे ही वैसे उसकी चौड़ाई कम होती [illegible]।

[illegible] लाट के पास एक लोहे की कोली [illegible] में [illegible] जाती है। अंगरेज़ लोगों ने बहुत [illegible] इस बात का आज तक पता नहीं चलता कि [illegible] कितनी गहरी गाड़ी गयी है। इस बात का

[illegible] की ओर होने से विश्वास होता है कि लाट [illegible] हिन्दू नरेश था।

[illegible] गिरि" नाम की एक पहाड़ी भी थी और उस पहाड़ी पर भगवान विष्णु का मन्दिर भी था। लोगों का यह अनुमान इस समय ठीक सिद्ध होता है, जब पास की कुतुब मसजिद की बनावट पर ध्यान दिया जाता है। मुसलमानों ने अनेक मन्दिरों को नष्ट-नष्ट कर के यह मसजिद बनवायी थी। इस मसजिद के खम्भों पर अभी तक अनेक देवी देवताओं की मूर्तियां खुदी हुई हैं। इस मसजिद के द्वार पर खुदा हुआ है कि यह मसजिद [illegible] मन्दिरों को तोड़ कर उनके मसाले से बनवायी गयी। यह अच्छा हुआ कि मन्दिरों की जगह मुसलमानों ने मसजिदें बनवाया, जहां पहले हिन्दू मत्था टेकते थे, वहां मुसलमानों ने भी मत्था टेकने की जगह बनवायी। यदि [illegible] इन मन्दिरों को नष्ट कर यहां बुतखाने बनवा देते, तो [illegible] उन्हें कौन रोक सकता था

ऐतिहासिकों में कीली गाड़ने वाले राजा चन्द्र के सम्बन्ध [illegible] पता नहीं लगता। इनके नाम के कुछ सिक्के मिले हैं। [illegible] चन्द्र के होने का यह दूसरा प्रमाण है। अंग्रेज़ विद्वान् [illegible] का राज्यकाल ईसा की तीसरी और चौथी शताब्दी के बीच में बतलाते हैं। पर इस कीली के गाड़े जाने का [illegible] चन्दबरदाई ने अपने पृथ्वीराज रासो में लिखा है [illegible] है। इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि राजा चन्द्र ने इस कीली को स्थापित किया था। रासो में लिखा है [illegible] तोमर वंश के सातवें राजा अनङ्गपाल ने पृथ्वीराज के

जन्म का उत्सव मनाने के लिये व्यास नामधारी किसी ब्राह्मण ज्योतिषी से मुहूर्त पूछा। कुछ देर तक अँगुलियों पर गिनकर व्यास ने कहा "इसी समय अच्छा मुहूर्त है। इस कीली को यहीं गाड़िये। ऐसा करने से यह कीली शेषनाग के मस्तक में जा लगेगी और फिर तुम्हारा राज्य किसी के हिलाये न हिलेगा वह अचल हो जायगा। कीली धरती में गाड़ दी गयी पर अविश्वासी राजा को ब्राह्मण देव की बातों पर विश्वास न हुआ। उसने उस कीली को उखड़वाया। निकालने पर उस कीली की नोक में लोहू लगा पाया गया। तब ब्राह्मण ने कहा—"आपका राज्य वैसे ही उखाड़ा जायगा जैसे आपने इस कीली को उखाड़ा है। तोमर वंश वालों का राज्य पूरा हुआ और अब चौहान वंश के राजाओं का राज्य होगा। उनके बाद मुसलमानी राज्य आरम्भ होगा।" ब्राह्मण की बातें सुन राजा को क्रोध चढ़ आया और उस अविवेकी राजा ने उस भविष्यवक्ता को देश निकाले का दंड दिया। ब्राह्मण देव उस राजा के राज्य का त्याग कर अजमेर गये। वहां लोगों ने उनका बड़ा सत्कार किया।

शाहजहां बादशाह के समय में एक हिन्दू कवि हुए हैं। उनका नाम था खड्गराय। उन्होंने इस कीली का जो इतिहास लिखा है वह चन्द्र बरदाई के लेख से भिन्न है। वे लिखते हैं कि व्यास नाम के ब्राह्मण ने तोमरवंशीय प्रथम राजा अनङ्गपाल को पचीस अंगुल लम्बी एक कीली देकर उनसे कहा, "इसे

धरती में गाड़ दो" ब्राह्मण के कथनानुसार अनङ्गपाल ने उस कीली को, वैशाख बदी १३ सं० ७९२ (सन् ७३५ ई०) के दिन धरती में गाड़ दिया। व्यास ने कीली को गड़ा हुई देख कर, राजा से कहा, अब आपका राज्य अचल हो गया। क्योंकि कीली जाकर शेषनाग के माथे पर टिक गयी। यह कह कर ब्राह्मण तो चला गया, पर राजा को ब्राह्मण की बात पर विश्वास न हुआ। उसने उस कीली को उखड़वा डाला। पर उसकी नोक में लोहू देख, वह बहुत डरा और ब्राह्मण को बुलवाकर उस कीली को फिर गाड़ने की प्रार्थना की। पर इस बार वह कीली उन्नीस ही अंगुल धसी और नीचे पर भी ढीली ही रही। यह देख ब्राह्मण ने कहा—तुम्हारा राज्य इस कीली की तरह अस्थिर रहेगा और उन्नीसवीं पीढ़ी के बाद चौहान वंशीय राजा राज्य करेंगे। उनके बाद मुसलमानों की हुकूमत शुरू होगी। पीछे ऐसा ही हुआ भी। इस कथा को लेकर कुछ लोग कहते हैं कि कीली के ढीली रह जाने से उस नगर का नाम ढिल्ली अर्थात् दिल्ली पड़ा। न मालूम वह कीली किस धातु की बनायी गयी है कि उसको यहां गड़े सैकड़ों वर्ष बीत गये, पर उसका रङ्ग आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है और उस पर जङ्ग (काई) नहीं दौड़ी।

—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद

(प्रश्न)

[१] देहली का प्राचीन नाम क्या था? और उसे [illegible]

[२] देहली की राजधानी यवनों के हाथ में कब आई ?

[३] देहली की प्रसिद्ध इमारतों का संक्षेप में वर्णन करो।

[४] देहली की कीली किस राजा ने गड़वाई और गड़ने का क्या कारण था ?

[५] पृथ्वीराज के विषय में जो कुछ जानते हो संक्षेप में वर्णन करो।

१७—विदुरनीति

नरपति नसत कुमन्त्र सों, साधु कुसंगति पाय।
विनसत सुत अतिप्यार सों, द्विज बिन पढ़े नसाय॥१॥
पावक बैरी रोग ऋण, सबनेहुँ राखिय नाहिं।
ये थोड़े हू बढ़हिं पुनि, महा यतन सों जाहिं॥२॥
लोभ सरिस अवगुण नहीं, तप नहिं सत्य समान।
तीरथ नाहिं मन शुद्धि सम, विद्या सम धन आन॥३॥
आनें गुन अवलोकिये, करिये [illegible]
बाल-वचन हू करिय जो, होय नीति अनुसार॥४॥
सकल वस्तु संग्रह करै, आवै कोउ दिन काज।
समय परे पर ना मिलै, [illegible]॥५॥
जो विचार बिन करत है, ते [illegible]
ताते काज विचार कै, [illegible]॥६॥
दुर सज्जन पण्डित धनी, [illegible]
[illegible] में रहिये नहीं, [illegible]॥७॥

सुहृद बन्धु परदेश में, धन ताला के माहिं।
विद्या पुस्तक मध्य ये, समय सम्हारैं नाहिं॥ ८॥
मित्र सोई जो कपट बिन, बन्धु सोइ हित होय।
देश सोइ जहं जीविका, मन रुचि कर तिय सोय॥ ६॥
लाख मूर्ख तजि राखिये, इक पण्डित बुधि धाम।
सर शोभा इक हंस सों, लाख काग किहि काम॥ १०॥
राजा पण्डित तुल्य नहिं, जानहुं नर सिरताज।
पण्डित पूज्य जहान में, नृपति पूज्य निजराज॥ ११॥
तब लौं मूरख चौल ही, जब लौं पण्डित नाहिं।
जब लौं रवि नभ नहिं उदय, तबलौं नखत दिखाहिं॥ १२॥
हंस न बक में सोहई, तुरग न रासभ माहिं।
सिंह न सोहै स्यार में, विज्ञ मूर्ख में नाहिं॥ १३॥
धन ते विद्याधन बड़ो, रहत पास सब काल।
देय जितो बाढ़े तितो, छोर न लेय नृपाल॥ १४॥
शत्रु नहीं कोउ रोग सम, सुत सम नहिं कोइ प्रीत।
भाग सरिस कोउ बल नहीं, विद्या सम नहिं मीत॥ १५॥
सब परतिय जिहि मातुसम, सब परधन जिहि धूर।
सब जीवन निजसम लखै, सो पण्डित भरपूर॥ १६॥
निवहिं कन्त पुत्रहिं पिता, शिष्यहिं गुरु बदार।
स्वामि सेवकहिं देवता, यह श्रुति-मत निर्धार॥ १७॥
करिये विद्यावन्त को, सेवन अरु सहवास।
तासों आवहि अमित गुन, अवगुन होहिं विनास॥१८॥

ह०—धन्य देवी ! आखिर तो चन्द्र सूर्य कुल की स्त्री हो ! तुम न धीरज धरोगी तो और कौन धरेगा । -

शै०—(चिता बना कर पुत्र के पास आकर, उठाना चाहती और रोती है) ।

ह०—(तो अब चलें) उससे आधा कफन मांगें (आगे बढ़कर और बल पूर्वक आँसुओं को रोक कर शैव्या से) महाभागे ! श्मशानपति की आज्ञा है कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूंकने न पावे । सो तुम पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो । (कफ़न माँगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है) ।

(नेपथ्य में)

'अहो धैर्यमहोसत्यमहोदानमहो बलम् !
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्वलोकोत्तरंकृतम् ।'

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै०—हाय कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है । वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य है । नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो ! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखंड है ।

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) नारायण ! नारायण ! महाभागे ऐसा मत कह । शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं । ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित होगा ।

अपना धर्म विचारो । (सामों ।) मृत-कम्बल हमें दो और अपना काम आरम्भ करो ।। (हाथ फैलाता है)

शै०—(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिह्न देख कर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र इतने दिन तक कहाँ छिपे थे। देखो अपने गोद के खेलाये दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भाँति मसान में पड़ा है। (रोती है।)

ह०—(छिः, धीरज धरो यह रोने का समय नहीं है देखो सबेरा हुआ चाहता है। ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले और एक लज्जा मात्र बच गई है, वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रख कर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कफन हमको दो।

शै०—(रोती हुई) नाथ मेरे पास तो कफन भी नहीं था। अपना आँचल फाड़ कर इसे लपेट लाई हूँ। उसमें से भी जो आधा दे दूँगी तो यह खुला रह जायगा। हाय चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता। (बहुत रोती है)

ह०—(बड़े दुःख से आँसुओं को रोक कर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी रो मत। ऐसे ही समय में तो धीरज और धर्म रखना काम है। मैं जिसका दास हूँ उसकी आज्ञा